अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-41, अंक-15, 16-31 मार्च, 2018

अ.भा. सर्वोदय समाज का 47वां सम्मेलन

अ. भा. सर्वोदय समाज के 47वें सम्मेलन के उद्‌घाटन अवसर पर सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही, डॉ. एस.एन. सुब्बराव एवं अन्य गणमान्य वरिष्ठ गांधीजन

25 मार्च
गणेश शंकर विद्यार्थी
पुण्य-तिथि
विनम्र स्मराणांजलि

"लगा घाव है अब कठिन रह-रह के होती चमक।
रहा काम अब आपका मरहम रखिये या नमक।"

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 41, अंक : 15, 16-31 मार्च, 2018

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
फोन : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **भवानी शंकर 'कुसुम'**

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. गांधी का अविष्कार अमोघ अस्त्र... 2
2. प्रार्थना के अर्थ और आवश्यकता... 3
3. कर्मवीर गांधी... 4
4. शहीद पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी... 7
5. गुलामी बापू की... 12
6. उपन्यास - 'बा'... 14
7. सर्व सेवा संघ का 86वां अधिवेशन... 17
8. अ. भा. सर्वोदय समाज सम्मेलन... 18
9. शहीद पत्रकार : गणेश, गांधी और... 20

प्रधान संपादक की कलम से...

गांधी का अविष्कार अमोघ अस्त्र 'सत्याग्रह'

जिस अमोघ अस्त्र के अविष्कार ने गांधी को विश्व पटल पर एक आकाशदीप की तरह स्थापित कर दिया वह सत्याग्रह है! दुनिया भर में पूंजीवाद के खिलाफ, नस्लवाद के खिलाफ, जातिवाद के खिलाफ, नारी मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाले, पर्यावरण की रक्षा के लिए संघर्ष करने वाले, दलितों व शोषितों की मुक्ति के लिए संघर्ष करने वालों ने और तमाम अन्य प्रकार के आंदोलन चलाने वालों ने गांधीजी के सत्याग्रह से प्रेरणा ली।

अहिंसक क्रांति का अब तक का विकसित हुआ सबसे बड़ा माध्यम सत्याग्रह है। सत्याग्रह एक ही समय में व्यक्ति परिवर्तन, मूल्य परिवर्तन तथा व्यवस्था परिवर्तन का माध्यम बन जाता है। ये दो प्रकार से कार्य करता है। एक, हर स्तर पर हिंसा एवं अन्याय का निषेध तथा दूसरे अन्यायी का हृदय परिवर्तन करने का माध्यम है। सत्याग्रह करने वाला दूसरे को कसौटी पर कसने के पहले, स्वयं को एवं विरोधी को, दोनों को नैतिकता के उच्च से उच्चतर स्तर पर ले जाने का माध्यम है।

सत्याग्रह हिंसा, दमन व अन्याय आधारित शक्तियों का न केवल प्रतिकार व निषेध करता है, बल्कि नयी सत्ता का आधार भी प्रकट करता है। सत्याग्रह सत्ता के जिस नये स्वरूप का उद्घाटन करता है, वही लोक सत्ता का अधिष्ठान भी बनता है।

जो वर्तमान सत्ताएं हैं, चाहे वे राजव्यवस्था की हों, अर्थव्यवस्था की हों या समाज व्यवस्था की—उनके मूल में, उनकी शक्ति का आधार सैन्य-शक्ति, शस्त्र बल की शक्ति, दमन करने की शक्ति या शोषण करने की शक्ति है। मोटे तौर पर गांधीजी ने सत्याग्रह के जो प्रयोग किये वे इस प्रकार के थे—राजसत्ता की अनीति के खिलाफ सविनय अवज्ञा एवं असहयोग, पूंजीवादी शोषण के खिलाफ उनके उत्पादों का बहिष्कार एवं स्वदेशी पर जोर, सामाजिक हिंसा के खिलाफ एवं कुरीतियों के विरुद्ध पिकेटिंग; धरना; उपवास आदि! आज सूक्ष्मतम इकाईयों से लेकर विराट-विशालकाय इकाईयों तक की व्यवस्थाओं का मूल आधार संस्थागत संगठित हिंसा है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण वैश्विक पूंजीवादी बाजार की हिंसा है, जिसे राजसत्ताओं की हिंसा का समर्थन प्राप्त है। सत्याग्रह का एक महत्त्वपूर्ण आयाम संस्थागत हिंसाओं को खत्म करना है, जिसमें आज की तात्कालिक चुनौती वैश्विक पूंजीवादी बाजार व राजसत्ताओं के गठजोड़ की हिंसा है। श्रम का शोषण व जल, जंगल, जमीन-खनिज आदि प्राकृतिक संसाधनों का निर्बाध दोहन व इन पर नियंत्रण, इस गठजोड़ की हिंसा के सबसे बड़े उदाहरण हैं। इनके खिलाफ सत्याग्रह आज की सबसे बड़ी चुनौती है।

सत्याग्रह का दूसरा आयाम यह है कि चूंकि यह प्रत्यक्ष एवं संस्थागत दोनों तरह की हिंसा का निषेध करता है, इस कारण इसका अपना बल आत्मिक बल एवं नैतिक बल है। हिंसा जिन भाव ऊर्जाओं पर टिका रहता है वे हैं आक्रामकता, क्रोध, लोभ तथा व्यक्तियों, वस्तुओं व संसाधनों पर नियंत्रण में रखने की इच्छा। दूसरी ओर अहिंसा जिन भाव-ऊर्जाओं पर टिकती है वे हैं प्रेम, करुणा, अस्तेय, अपरिग्रह एवं सहभागिता आदि। सत्याग्रह इन्हीं भाव ऊर्जाओं को जागृत करता है व विस्तारित करता है। इसी कारण नयी वैकल्पिक सत्ताओं (लोकसत्ता के विभिन्न आयामों) का आधार यही भाव ऊर्जायें होंगी। ऐसा अकारण नहीं है कि गांधीजी के आंदोलनों में बड़ी संख्या में महिलाओं ने भाग लिया। इसका कारण यही है कि महिलाओं में ये भाव ऊर्जा में सहज रूप से प्रकट होती हैं। इसी कारण सत्याग्रह सबसे पहले उस व्यक्ति में परिवर्तन लाता है, जो सत्याग्रह करता है।

सत्याग्रह का तीसरा आयाम यह है कि यह संस्थागत व्यवस्थाओं का विकल्प भी प्रस्तुत करता है। इसके दो पक्ष हैं। एक पक्ष यह है कि यह संस्थागत की हिंसा की व्यवस्थाओं के साथ असहकार, असहयोग करता है तथा उनके उत्पादों-सेवाओं का बहिष्कार करता है। राजसत्ता के हर जन-विरोधी कदम के साथ व्यापक असहयोग तथा वैश्विक पूंजीवादी बाजार का पूर्ण बहिष्कार हो तो, वर्तमान संस्थागत हिंसा को 10 प्रतिशत तक खत्म किया जा सकेगा।

सत्याग्रह का दूसरा पक्ष यह है कि यह वैकल्पिक रचना का कार्य भी साथ-साथ खड़ा करता जाता है। लोकसत्ता के विभिन्न आयाम इन्हीं वैकल्पिक रचना के सूत्रों से विकसित होते जाते हैं। जिस सत्याग्रह में वैकल्पिक रचना-निर्माण का कार्य अंतर्निहित नहीं होगा, वह केवल प्रतिकार करेगा, क्रांति नहीं। बिमल कुमार

प्रार्थना के अर्थ और आवश्यकता

❑ गांधी

मुझे खुशी है कि आप सब लोग चाहते हैं कि मैं प्रार्थना के और उसकी आवश्यकता के बारे में कुछ कहूं। मैं मानता हूं कि प्रार्थना धर्म का प्राण है और सार है। इसलिए प्रार्थना मनुष्य के जीवन का मर्म होनी चाहिए, क्योंकि कोई आदमी धर्म के बिना जी ही नहीं सकता। कुछ लोग हैं जो अपनी बुद्धि के अहंकार में कह देते हैं कि उन्हें धर्म से कोई सरोकार नहीं। मगर यह तो ऐसा ही है जैसे कोई मनुष्य कहे कि वह सांस तो लेता है मगर उसकी नाक नहीं है। बुद्धि से कहिए या स्वभाव से अथवा अंधविश्वास से कहिये, मनुष्य दिव्य तत्त्व से अपना कुछ-न-कुछ नाता स्वीकार करता ही है। घोर-से-घोर नास्तिक या अनीश्वरवादी भी किसी नैतिक सिद्धांत की आवश्यकता को मानता है और उसके पालन में कुछ-न-कुछ भलाई और उसका पालन न करने में बुराई समझता है। ब्रैडलॉ, जिनकी नास्तिकता मशहूर है, सदा अपने आंतरिक दृढ़ विश्वास को घोषित करने का आग्रह रखते थे। उन्हें इस प्रकार सच कहने के कारण अनेक कष्ट उठाने पड़े, परंतु इसमें उन्हें आनंद आता था। वे कहते थे कि सत्य स्वयं अपना पुरस्कार है। उन्हें सत्य का पालन करने से होने वाले आनंद का बिलकुल भान न हो, ऐसा नहीं था, परंतु यह आनंद सांसारिक बिलकुल नहीं होता। यह ईश्वर के साथ अपने संबंध की अनुभूति से पैदा होता है। इसलिए मैंने कहा है कि जो आदमी धर्म को नहीं मानता, वह भी धर्म के बिना नहीं रह सकता और नहीं रहता।

अब मैं दूसरी बात पर आता हूं। वह यह है कि प्रार्थना जैसे धर्म का सबसे मार्मिक अंग है, वैसे ही मानव-जीवन का भी। प्रार्थना या तो याचना-रूप होती है या व्यापक अर्थ में वह ईश्वर से, भीतर लौ लगाना होती है। दोनों ही सूरतों में अंतिम परिणाम एक ही होता है। जब वह याचना के रूप में हो तब भी वह याचना, आत्मा की सफाई और शुद्धि के लिए, उसके चारों ओर लिपटे हुए अज्ञान और अंधकार के आवरणों को हटाने के लिए होनी चाहिए। इसलिए जो अपने भीतर दिव्य ज्योति जगाने को तड़ रहा हो, उसे प्रार्थना का आसरा लेना चाहिए। परंतु प्रार्थना शब्दों या कानों का व्यायाम-मात्र नहीं है, खाली मंत्र जाप नहीं है। आप कितना ही राम नाम जपिये, अगर उससे आत्मा में भाव-संचार नहीं होता तो वह व्यर्थ है। प्रार्थना में शब्दहीन हृदय, हृदयहीन शब्दों से अच्छा होता है। प्रार्थना स्पष्ट रूप से आत्मा की व्याकुलता की प्रतिक्रिया होनी चाहिए। जैसे कोई भूखा आदमी मनचाहा भोजन पाकर सुख का अनुभव करता है, ठीक वैसे ही भूखी आत्मा को हार्दिक प्रार्थना में आनंद आता है। यह मैं अपने और साथियों के यत्किंचित अनुभव के आधार पर कहता हूं कि जिसे प्रार्थना की जादू की प्रतीति हुई है, वह लगातार कई दिन तक आहार के बिना तो रह सकता है, परंतु प्रार्थना के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। कारण, प्रार्थना के बिना भीतरी शांति नहीं मिलती।

कोई कहेगा कि अगर यह बात है तो हमें अपने जीवन के हर क्षण में, प्रार्थना करते रहना चाहिए। निस्संदेह बात यही है; परंतु हम तो भूल में पड़े हुए प्राणी हैं; एक क्षण के लिए भी भगवान से भीतर लौ लगाने के लिए बाहरी विषयों से हटकर अंतर्मुख होना हमें कठिन जान पड़ता है। तब हर क्षण ईश्वर से लौ लगाये रखना तो हमारे लिए असंभव ही होगा। इसलिए हम कुछ समय नियत करके, उस समय थोड़ी देर के लिए, सांसारिक मोहों को छोड़ देने का गंभीर प्रयत्न करते हैं, या कहिए कि इन्द्रियातीत रहने की दिली कोशिश करते हैं। आपने सूरदास का भजन सुना है। यह ईश्वर से मिलने के लिए भूखी आत्मा की करुण पुकार है। हमारे पैमाने से

'अनुयायियों के लिए'

विरोधी की निन्दा कभी की ही नहीं जा सकती। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि उसके कार्यों का सच्चा वर्णन नहीं किया जा सकता। कोई विरोध करने के कारण ही दुर्जन नहीं हो जाता। हम अपने लिए जितना भला होने का दावा करते हैं, वह भी उतना ही भला आदमी हो सकता है; और फिर भी यह संभव है कि उसके और हमारे बीच महत्त्वपूर्ण मतभेद हों।

इसलिए हमारी टीका तो यह होगी कि अगर हम उसे झूठा मानते हैं, तो उसके असत्य का सत्य से, अविवेक का विवेक से, उद्दंडता का शांतिपूर्ण साहस से, हिंसा का सहनशीलता से, अहंकार का नम्रता से और बुराई का भलाई से सामना करें। 'मेरा अनुयायी' निन्दा करने की नहीं, बल्कि हृदय-परिवर्तन की पूरी कोशिश करेगा। –गांधी

वे एक संत थे, परंतु उनके अपने पैमाने से वे घोर पापी थे। आध्यात्मिक दृष्टि से वे हमसे मीलों आगे थे, परंतु उन्हें ईश्वर-वियोग की पीड़ा की इतनी ज्यादा अनुभूति थी कि उन्होंने आत्मग्लानि और निराशा के स्वर में अपनी पीड़ा इस तरह व्यक्त की।

मैंने प्रार्थना की आवश्यकता की बात कही है और उसके द्वारा प्रार्थना के सार पर भी प्रकाश डाला है। हमारा जन्म अपने मानव बंधुओं की सेवा के लिए हुआ है और यदि हम पूरी तरह से जाग्रत न रहें तो यह काम हम अच्छी तरह नहीं कर सकते। मनुष्य के हृदय में, अंधकार और प्रकाश की शक्तियों में, सतत संघर्ष होता रहता है। अतः जिसके पास प्रार्थना की डोर का सहारा नहीं है, वह अंधकार की शक्तियों का शिकार हो जायेगा। प्रार्थना करने वाला आदमी अपने मन में शांति का अनुभव करेगा और संसार के साथ भी उसका संबंध शांति का होगा। जो मनुष्य प्रार्थनापूर्ण हृदय के बिना सांसारिक कर्म करेगा, वह स्वयं भी दुःखी रहेगा और संसार को भी दुखी करेगा। इसलिए मनुष्य की मरणोत्तर स्थिति पर प्रार्थना का जो प्रभाव होता है, उसके सिवा भी प्रार्थना का मनुष्य के पार्थिव जीवन में असीम महत्त्व है। हमारे दैनिक कार्यों में व्यवस्था, शांति और स्थिरता लने का एकमात्र उपाय प्रार्थना है। आश्रम के अंतेवासी हम लोग सत्य की खोज में और सत्य पर जोर देने के लिए यहां आये और हमने प्रार्थना की क्षमता में विश्वास करने की बात कही, लेकिन अभी तक प्रार्थना को परमावश्यक विषय नहीं बनाया है। हम अन्य मामलों पर जितना ध्यान देते हैं, उतना इस पर नहीं देते। एक दिन मेरी निद्रा भंग हुई और मैंने अनुभव किया कि इस मामले में, अपने कर्तव्य के प्रति, मैं बहुत ही लापरवाह रहा हूं। इसलिए मैंने कठोर अनुशासन के साधनों का सुझाव दिया है ओर आशा है कि हम बिगड़ने के बजाय सुधरेंगे ही।

(17 जनवरी, 1930 या उससे पूर्व साबरमती आश्रम की प्रार्थना सभा में) ❑

कर्मवीर गांधी

❑ **गणेश शंकर विद्यार्थी**

संग्राम-घोर! न्याय और अन्याय का! मनुष्य के सर्वोच्च भावों और उसके सबसे नीचे भावों का। पशुता मनुष्यता के मुकाबले में है। एक ओर विकराल शक्ति और दूसरी ओर सौम्य शांति! एक ओर पशु-बल और दूसरी ओर धैर्य और दृढ़ता! एक ओर प्रकृति के स्वयं निर्मित ठेकेदार और दूसरी ओर प्रकृति की स्वाभाविकता के साथ उपासना करने वाली बीसवीं शताब्दी! उसकी रंगरेलियों से संसार की आंखें झप गयीं। मोहनी मूर्ति और संसार मोह गया। विकट जाल-मोह गये, फंस गये और सो गये! सुंदर रूप बदला। चंडिका ने अपनी भयंकर आकृति धारण की। चोट लगी—और बड़ी भारी। नींद उचट गयी। सज्जनता, समता, भ्रातृत्व और मनुष्यता की शांतिमय अमृतधारा में हलाहल विष की रेख देख पड़ी। लावण्यता में कुरूपता घुली-मिली। सरलता से भरी हुई हंसी में घृणा, अपमान और तिरस्कार से भरी हुई मुस्कुराहट नजर आयी। अमृत और विष! मिष्टाा और कटुता!

घोर संग्राम! सभ्यता और उस पर भी बढ़ी हुई, लेकिन घटिया सभ्यता ने इतना विष नहीं उगला था। न्याय और स्वतंत्रता की भूमि से नाता जोड़ने वाले, लेकिन हृदय इतना छोटा कि मनुष्य और मनु में फर्क निकालने वाले! सफेद चमड़े के हृदय में कालापन आ गया। गोरा संसार और काला संसार। काले में सभ्यता नहीं। काले में तमीज नहीं। काली खोपड़ी में अक्ल कहां? काले रंग से सद्‌गुणों को घृणा है। योग्यता, सभ्यता, सौम्यता, सत्यता और विज्ञता सब गोरे रंग लिए प्रकृति ने सुरक्षित रख छोड़े हैं। काले रंग का उन पर दावा नहीं। भूमि-वह भी सुरक्षित है। छिः काले! पवित्र भूमि पर पैर मत रख, यह भूमि गोरे खुदाई फौजदारों की है। दक्षिण अफ्रीका, कनाडा और आस्ट्रेलिया मेरे राजा के झंडे तले हैं। लेकिन भारत से बाहर होते ही तू अपने राजा के झंडे से बाहर हो जाता है। संसार में, काले आदमी, तेरा कहीं भी ठिकाना नहीं।

बीसवीं शताब्दी के इस घोर संग्राम की छटा देखोगे? भयंकर रूप! पूरा बल! अथाह वेग! सामना करना अति कठिन! संसार के मजबूत-से-मजबूत हाथ ढीले हैं। फौलाद हैं, जो नहीं कटता। हवा है, जो नहीं दबती। जल है, जो नहीं पकड़ा जाता। इंग्लैंड की लंबी भुजाएं शिथिल हैं। लाडले बेटे और अब वे बिगड़ गये। हाथ से जाते रहे। मानने से मानते नहीं। दूसरों की परवाह ही क्या? जिन्हें परवाह है, वे कठोर शक्ति की कठोरता का शिकार हैं। ब्रिटिश साम्राज्य के निवासी, लेकिन इससे क्या? तुम एशिया के रंगदार आदमी हो। एक दोषी की तरह रजिस्टर में अपनी उंगलियों की छाप दो और यह लो सर्टिफिकेट, जो तुम्हारी हीनता, दीनता और दुर्दशा की सनद है। अच्छी तरह रखना, अफ्रीका का छोटा अफसर तुमसे इसे मांगेगा। दिखना, नहीं तो 1500 जुर्माना या तीन मास के लिए जेल जाओगे। व्यापार करना हो तो लाइसेंस लो। तुम किसी खास जायदाद के मालिक नहीं हो सकते। नेटाल के काले हिन्दुस्तानियों! तुम पैंतालीस रुपये साल का टैक्स दो! कोई रियायत नहीं, चाहे गरीब हो या अमीर। यदि तुम पुरुष हो और तुम्हारी

उम्र तेरह वर्ष की है, और चाहे तुम दोनों कुछ भी न करते हो, लेकिन तुम्हें यह टैक्स देना ही पड़ेगा। नहीं तो जेल। अपमान— और बात-बात पर। फुटपाथ पर न चलने पाओगे। ट्राम में न बैठने पाओगे। होटलों से निकाले जाओगे, और रेल के उच्च दर्जों में तुम काले आदमियों के लिए जगह नहीं। तुम्हारी स्त्री—छिः, कैसी स्त्री और कैसे पुत्र? होश की बातें करो। तुम्हारी स्त्री दक्षिण अफ्रीका में वेश्या है और तुम्हारे बच्चे, दोगले लड़के!

देवासुर संग्राम! आधुनिक सभ्यता के पशु-भाग का विकास! चंडिका परमाणुवादिता का विजय-हास्य से भरा गगनभेदी-नाद! देश-भक्ति और जाति-भक्त नहीं, नैतिक कर्तव्य की प्रेरणा नहीं, नागरिकों की नागरिकता नहीं, किन्तु नीचातिनीच स्वार्थ, धूर्तता और सांसारिक सुख और वह भी व्यक्तिगत ही। बढ़ती हुई भीषणता, और चढ़ी हुई निर्दयता! लेकिन, इधर हृदय और सच्चे हृदय। अन्याय, अत्याचार, स्वार्थ और अविवेक की बड़ी-से-बड़ी शक्ति के सामने न झुकने वाले। इधर हिरण्यकश्यप की रुद्रता और कठोरता। इधर प्रह्लाद की निर्मल, कोमल और सबल अटलता। राम और रावण, कृष्ण और कंस एक-दूसरे के लिए परमावश्यक। और वह भूमि-राम, कृष्ण और प्रह्लाद की भूमि-संसार के सामने आयी। बढ़ती हुई भयंकर, तामसिक और क्रूर लहरों को चट्टान का सामना करना पड़ा। सतयुग में देवासुर संग्राम के समय समुद्र मथा गया। चौदह रत्न निकले। कलियुग में भी यह संग्राम पेश है। समुद्र की शांति भंग की गयी। देवताओं ने नहीं, असुरों ने की। फल? रत्न निकले और ऐसे, जिन पर किसी एक देश के देवता ही नहीं, संसार-भर के देवता न्यौछावर हो जायें। शांति की अनंत राशियों ने पशु-बल के सूखे जंगल में चिनगारी लगाने के लिए आत्म-बल की ज्योतिर्मयी, स्थिर, दिव्य अग्निशिखा को जन्म दिया। प्राचीन भूमि अभी उसकी उर्वरा शक्ति नष्ट नहीं हुई। मुर्झाया हुआ हृदय खिल उठा! अभी तेरी भूमि की मिट्टी, हवा और पानी में वृत्रासुर के लए दधीचि के पैदा करने की शक्ति है। गिरी हुई आत्मा! अधिक नीचे मत गिर! अभी तेरे आकाश में सहस्त्रों कर्मवरी नक्षत्र के साथ कर्मवरी चन्द्र के उदय करने की बल है। आह! मातृभूमि! तेरी शक्ति पर अविश्वास नहीं और तेरी भक्ति में निराशा नहीं। पशु-बल! उसकी परवाह नहीं, जब तक तू अपने पुत्रों के हृदयों में आत्म-बल का संदेश पहुंचा सकती है।

पहिली चोट! आकाश ने चन्द्र और उसके साथी नक्षत्रों का आहवान किया। कर्मवीर मोहनदास करमचंद गांधी और उसके साथ कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण हुए। अफ्रीका का समुद्र तट! गांधी का जहाज! गांधी अपने साथ बहुत से हिन्दुस्तानी कारीगर ला रहा है। अब गोरे कारीगरों का रोजगार मारा गया। गोरों के हृदय कांप उठे। गांधी को जीता न छोड़ो। गांधी, जहाज से अभी मत उतरो! लेकिन, नहीं मानते तो देखो, तुम्हारे ऊपर चोट होना ही चाहती है। लो, वे तुम्हारे ऊपर टूट पड़े। एक नहीं, दो नहीं, कितने ही एक साथ! बचाओ! कोई बचाओ। लेकिन कौन आगे बढ़े? कोई पुरुष नहीं। एक देवी, और वह भी उस रंग की, जिस रंग के लोग जमीन पर पैर नहीं रखते। जान बची, और बड़ी मुश्किल से। किसी पुरुष की दया से नहीं, बल्कि एक देवी की कृपा से। दक्षिण अफ्रीका के पुरुषत्व-विहीन पुरुषों की मरुभूमि में इस देवी की दिव्य शांत छाया! गनीमत!

भीषण बोअर युद्ध! गोलियां चल रही हैं। तोपें गोले उगल रही हैं। लाशें गिर रही हैं और रणक्षेत्र में ये कौन हैं? सैनिक नहीं, सादे भेष वाले। एक हजार आदमी। गोरे भी नहीं और अफ्रीका के काले भी नहीं। ये हैं गांधी के साथी। देखो, वे घायलों को रणक्षेत्र में से उठाते फिरते हैं, उनके घावों को धोते हैं और उनकी सेवा-सुश्रूषा करते हैं। गोलियां बरस रही हैं, और इनको जान की परवाह नहीं। सेनापति लार्ड राबर्ट्स का इकलौता पुत्र रणक्षेत्र की गोली का शिकार होता है और वह देखो, गांधी के काले साथी उसके गोरे शरीर को गोलियों के मेह से उठाकर ला रहे हैं। वह एक सुलूक, जो सभ्य गोरों ने असभ्य काले हिन्दुस्तानियों के नेता गांधी के साथ जहाज पर से उतरते समय किया था, और एक यह।

1906। काले रंग के धब्बे से दक्षिण अफ्रीका को सुरक्षित रखने की गोरी तरकीब का आगमन हुआ। सख्तियां और झिड़कियां, उपेक्षा और अपमान के बादल घिर आये। खैरियत और केवल इसी में, कि पशु-बल का आत्म-बल से मुकाबला किया जाये। प्रार्थनाएं लेकिन, गांधी ये देवता प्रार्थनाओं के लिए बहरे हैं। इंग्लैंड जाओ, चाहे और जगह, होगा कुछ नहीं। जातीय मान और जातीय पुरुषत्व का दांव है। अस्तित्व के लिए बल को प्रकट करने की जरूरत है। परीक्षा में दृढ़ता की परख है। तुम्हारा परिश्रम, तुम्हारी लेखनी का बल और तुम्हारे बोलने की शक्ति देखो, सब दम की दम में व्यर्थ हो गयी, क्योंकि इंग्लैंड भी अनुदारता के कठोर चंगुल में फंस गया है।

दूसरी चोट! गांधी जेल में और कितने ही हिन्दुस्तानियों के साथ! भयंकर दोष! उन्होंने अफ्रीका की धींगाधींगी का विरोध किया। सजाएं हुईं और ज्यादा-से-ज्यादा। जेल में कड़े काम, नाना प्रकार की तकलीफें, अफ्रीका के असभ्यपन की तरंग और कैदियों का मरण। गांधी को दो मास की सजा और साथियों को छह-छह मास की। दो ही मास की? नहीं, उतनी ही सजा दीजिए जितनी मेरे साथियों की है। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता। नेता का हृदय अपने साथियों के इस अधिक कष्ट से फट गया। आंसू बह चले। सिर झुक गया। मुंह मुरझा गया। अच्छा भोजन, गांधी, अच्छा भोजन लो! लेकिन मेरे साथियों को? उनको अफ्रीका के आदिवासियों का भोजन मिलेगा। मेरे लिए यह विष है। दृढ़ता ने स्वेच्छाचारिता के पैर डगमगा दिये। 'लो छोड़े जाते हो और यह कानून भी थोड़े ही दिनों में रद्द हो जायेगा। जब तक नहीं होता', तब तक उसके अनुसार अपने नाम रजिस्टर करा लो। अच्छा, लेकिन एक दल-विरोधी उठ खड़ा हुआ। वीर नेता इस नियम के

अनुसार काम करने के लिए आगे बढ़ता है, और उसकी पीठ पर अपने ही एक देशबंधु पठान की छुरी पड़ती है। क्यों? गांधी अपने पथ से हट गया है। लेकिन नहीं। पठान, तू भूल करता है। गांधी तुझसे अधिक दृढ़ है और अंत में, देख, तुझे उसके बल के सामने सिर झुकाना पड़ता है, क्योंकि उसका हृदय इतना बड़ा है कि उसने अपने हत्यारे को क्षमा कर दिया और साथ ही, बेहोश रहते हुए भी उस काम को पूरा ही करके छोड़ा जिसके रोकने के लिए तू उनकी हत्या करने को आगे बढ़ा था।

लेकिन अफ्रीका के गोरे शासक झूठे निकले। गांधी इंग्लैंड में फिर जेल में। नेता और साथी दोनों। मासों कारागार की कठिन तकलीफ! कपड़े ठीक नहीं, भोजन ठीक नहीं, साथियों के बच्चे और स्त्रियां भूखीं। पहरेदारों का अत्याचार और अधिकारियों का स्वेच्छाचार! लेकिन न चन्द्र की ज्योति घटी और न तारों ही की। चन्द्र के तेज के सामने राहु के छक्के छूट गये। हजारों नक्षत्रों में से शायद ही किसी ने टूटने का नाम लिया हो। जेल एक ही बार नहीं, कई-कई बार! अत्याचार एक ही बार नहीं, कई-बार! नहीं डिगे और नहीं डिगे।

पत्तियां हरी हैं और जड़ उन्हें पानी पहुंचाती है। तारे चमकते हैं और सूर्य से उन्हें प्रकाश मिलता है। अफ्रीका की मरुभूमि में अमृत वर्षा हुई और वर्षा की इंद्र गांधी ने! शुष्क भूमि में आत्मशक्ति की अर्चा हुई, और अर्चा की राम गांधी ने। दया शून्य हृदयों में दृढ़ता और बल का सिक्का जमा और सिक्का जमाया भीष्म गांधी ने। और गांधी को किस जड़ ने रस पहुंचाया? उस माता ने जिसके स्तर-पान से उसकाव शरीर पला। गांधी! बैरिस्टरी के लिए विलायत जाओ, लेकिन शपथ खाओ कि तुम मांस-मदिरा और स्त्री का सेवन नहीं करोगे। माता, नहीं करूंगा। और अक्षर-अक्षर शपथ निबाही गयी। और इस वीरा माता को किस माता ने जन्मा? मेरी और तुम्हारी माता ने, मेरी और तुम्हारी जननी ने, मेरी और तुम्हारी पालन-पोषण कर्त्री देवी ने! बालक गांधी और अब पुरुष गांधी। साथियों के ऊपर दोष लगाया जाता है, लेकिन नहीं, मैं ही दोषी हूं। मुझी को सजा दो। हिन्दू और मुसलमान दोनों एक ही माता के पुत्र हैं। आप मुझे सराहते हैं और चीजें भेंट करते हैं, लेकिन मैंने किया ही क्या? सेवा का भाव हृदय को उच्च करता है जो आदमी जितनी ही सेवा करता है, वह अपने को उतना ही उच्च बनाता है। प्लेग फैला और गांधी अपने देश-भाइयों की सेवा में दत्त-चित्त। अपने तन-बदन की सुख नहीं। हजारों रुपया मासिक की आय, लेकिन अब कुछ नहीं जो थी, वह सब सेवा की बेदी पर भेंट। युद्ध! गोरे असभ्य लोगों के खून से पृथ्वी को रंग रहे हैं। गोरों का पशुवत् हाथ बेदर्दी से रोका नहीं जा सकता। लेकिन, वह देखो! गांधी गोरे हाथों को काली बेदर्दी का शिकार अफ्रीका के काले आदमियों के घावों की मरहम-पट्टी कर रहा है। देश की मान-रक्षा के लिए धन की जरूरत है। लो, सब अर्पण। देश-भाइयों की दुःख-भरी आवाज का मार्ग यह लो—'इंडियन ओपीनियन। सारा खर्च—लाखों रुपये—अपने पास से 100 एकड़ भूमि यह भी लो, देश-भाइयों के लिए। कैदी के भेष में, हथकड़ियां पड़ी हुई—गठरी लादे हुए शहर के बीच में से होकर निकलना पड़ा, लेकिन यह भी कुछ नहीं। स्त्री बीमार है और लड़का अस्वस्थ। गांधी! देख आओ, देखो, अधिकारी लोग भी यही कहते हैं। लेकिन स्त्री की बीमारी से कर्त्तव्य-पालन ज्यादा महत्त्व का है। पूरा और पक्का बैरिस्टर, लेकिन स्याह का सफेद और सफेद का स्याह बनाने वाला नहीं। मुअक्किल झूठ बोला और कचहरी में, जज के सामने पहुंचने पर झूठ जानते ही मुअक्किल से सूखा सलाम। शत्रु भी सज्जनता के इतने कायल कि हथकड़ी भरे हुए हाथों और गठरी लादे हुए शहर से निकाले जाने पर गोरे 'नेटाल मरकरी' के हृदय में भी न्याय की लहरों ने हिलोरें मारी थीं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, गोरे और काले, सभ्य और असभ्य सभी बराबर, क्योंकि सभी परमपिता के हाथ की मूर्तियां हैं। सादगी और वह भी हद से बढ़ी हुई। कहा जाता है कि कभी पचीस लाख का आदमी, लेकिन अब पास एक हजार भी नहीं। सब सेवा भाव की नजर। पत्नी वीरा। पुत्र वीर। पत्नी जेल गयी ओर पुत्र हो आया और अब फिर तैयार!

शांति हुई थी, लेकिन अशांति की अग्नि भभक उठी। वही संग्राम और ओज से। कर्मवीर तैयार है, सिर हथेलियों पर। मातृभूमि और जाति की मान-मर्यादा की बेदी पर तन, मन और धन अर्पण। गांधी जेल में और नौ मास के लिए। और भी दो हजार वीरों पर चंगुल है। वीरा नारियां भी पीछे नहीं। घरे तपस्या! और इस तपस्या, इस महायज्ञ में अपने प्राणों की आहुतियां दी हैं और अब देवगण देख रहे हैं कि यज्ञ के मुख्य पात्र, भारत मही की गोद में सुख-निद्रा लेने वाले, अपना यज्ञ भाग लेने के लिए किस तरह आगे बढ़ते हैं? प्राणों की मांग नहीं, और न शरीर ही की। हाथ के मैले की जरूरत है और वह भी दूसरों के लिए नहीं, अपने भाइयों के बच्चों को कुछ दिन खिलाने के लिए। नहीं, बल्कि अपनी और अपने देश की मानरक्षा के काम को जारी रखने के लिए। सभ्य संसार देख रहा है, नहीं, सभ्य संसार से क्या मतलब, क्योंकि उसे गोरे और काले रंग के सवाल ने बावला कर रखा है। हमारे पूर्व-पुरुष जिन्होंने अपने उच्च भावों पर कोड़ी को, नहीं हड्डी की कोड़ी को ही नहीं, अपने सब कुछ तक को आन-की-आन में न्योछावर कर दिया, आज आकाश से देख रहे हैं कि हम उनकी संतान अपने उच्च भावों की रक्षा के लिए कितने त्याग से काम ले सकते हैं। कपूत? कदापि नहीं, जब तक हमारे शरीर में अक्ल है और अक्ल में तमीज करने की शक्ति, जब तक हमारे हृदय में भाव है और भावों में आगे बढ़ने का बल, तब तक हमें अपनी मातृभूमि का ज्ञान है और हमारी मातृभूमि में हमें उत्साहित करने की शक्ति, जब तक हमारे नेत्र संसार की ओर हैं और संसार में आगे बढ़ने के लिए रास्ते, तब तक हम कदापि पीछे नहीं देखेंगे, पीछे कदम नहीं रखेंगे और पीछे नहीं मुड़ेंगे। ❑

25 मार्च : गणेश शंकर विद्यार्थी पुण्य-तिथि : विनम्र स्मराणांजलि

शहीद पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी

❑ अटल तिवारी

शहीद पत्रकार की शहादत जिसपर गांधी गर्व करते रहे और स्वयं के लिए ऐसी ही शहादत किये जाने की ईश्वर से प्रार्थना करते रहे, उनकी उसी शहादत को स्मरण करता अटल तिवारी का यह आखेल उनकी पुण्य-तिथि पर श्रद्धांजलि के रूप में प्रस्तुत है जो उनका अमिट जीवन इतिहास है। –सं.

बीसवीं सदी के दूसरे दशक में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को जिन विभूतियों ने गति दी उसमें गणेश शंकर विद्यार्थी का नाम अग्रिम पंक्ति के सेनानियों में है। विद्यार्थी जी ने सब कुछ दाव पर लगाकर आजादी के लिए पत्रकारिता को ध्येय बनाया। लोगों को आंदोलन के लिए प्रेरित किया। विद्यार्थी ने एक तरफ अपने साप्ताहिक अखबार 'प्रताप' के जरिए अंग्रेज सरकार को पग-पग पर चुनौती दी तो दूसरी ओर देश की सामंती ताकतों को कठघरे में खड़ा करने में भी लेश मात्र संकोच नहीं किया। क्रांतिकारी एवं मुख राजनीतिक विचारों को लेकर 'प्रताप' हिन्दी प्रदेश का ही नहीं बल्कि पूरे उत्तर भारत का प्रमुख अखबार बना। उसका राजनीतिक स्वर क्रांतिकारी था, लेकिन इसके साथ कांग्रेस की नीतियों का पक्षधर भी था। अपनी इस पत्रकारिता के कारण उस पर छापे, जमानत, जब्ती, चेतावनी, धमकी एवं संचालकों को कारावास तक झेलना पड़ा। इन परिस्थितियों में भी संपादक विद्यार्थी जी देश के उत्थान और आजादी की मशाल लिये पत्रकारिता के युद्ध-क्षेत्र में डटे रहे। उस समय अखबार-नवीसी पेशा नहीं था। देश और समाज-सेवा के लिए अखबार निकाले जाते थे। पत्रकारिता में वही लोग आते थे जो हर तरह के त्याग और बलिदान के लिए तैयार रहते थे। इसी भावना को केन्द्र में रखकर 'प्रताप' में समाचार, संपादकीय टिप्पणी, राजनीतिक लेख और कविताएं प्रकाशित होती थीं। विद्यार्थी जी अपने तीन साथी शिव नारायण मिश्र, नारायण प्रसाद अरोड़ा व यशोदानन्दन के साथ मिलकर 9 नवंबर, 1913 को उत्तर प्रदेश के कानपुर शहर में 'प्रताप' की नींव डाली थी। जन्म-काल से ही 'प्रताप' का दफ्तर क्रांतिकारियों की शरण स्थली था तो युवाओं के लिए पत्रकारिता का प्रशिक्षण केन्द्र। विद्यार्थी जी ने महज पाठकों के लिए ही नहीं लिखा बल्कि नये पत्रकार तैयार करने और पत्रकारिता को मिशन बनाने की दिशा में भी काम किया। 'प्रताप' के माध्यम से जनजागरण का अभियान चलाया। जन आंदोलन को आगे बढ़ाने के पुरस्कार-स्वरूप बार-बार कारावास की सजा काटी। 'प्रताप' के पहले अंक में पत्रकारिता की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए 'प्रताप की नीति' नामक लेख में लिखा, 'आज अपने हृदय में नयी-नयी आशाओं को धारण करके और अपने उद्देश्यों पर पूर्ण विश्वास रखकर 'प्रताप' कर्मक्षेत्र में आता है। समस्त मानव-जाति का कल्याण हमारा परमोद्देश्य है और इस उद्देश्य की प्राप्ति का एक बहुत बड़ा और बहुत जरूरी साधन हम भारतवर्ष की उन्नति को समझते हैं।' उन्होंने इस लेख में 'प्रताप' के उद्देश्य पाठकों के सामने रखे तो पत्रकारिता के जरिये वह किसका साथ देंगे और किसका साथ नहीं देंगे, इसका भी उल्लेख किया, 'हम न्याय में राजा और प्रजा दोनों का साथ देंगे, परंतु अन्याय में दोनों में से किसी का भी नहीं। हमारी यह हार्दिक अभिलाषा है कि देश की विविध जातियों, सम्प्रदायों और वर्णों में परस्पर मेल-मिलाप बढ़े।'

साप्ताहिक 'प्रताप' ने सामान्य अंक निकालने के साथ साल में एक-दो विशेषांकों का प्रकाशन शुरू किया तो पत्रकारिता में पुस्तिका प्रकाशन की एक अलग तरह की परम्परा शुरू की। विद्यार्थी जी 'स्वतंत्रता देवी' को केन्द्र बिन्दु मानकर पत्रकारिता कर रहे थे, जो अंग्रेज सरकार को रास नहीं आ रही थी। लिहाजा 'प्रताप' को लक्ष्य कर छापों और जब्ती का दौर शुरू हो गया। 'प्रताप को

शुरू हुए एक वर्ष हुआ था कि 24 अप्रैल, 1915 को रात के समय 'प्रताप' के प्रेस और कार्यालय तथा विद्यार्थी जी और मिश्र जी के आवासों पर पुलिस ने छापा मारा। तलाशी ली। ग्राहकों का रजिस्टर व सामग्री की प्रतियां उठवा ली। पर 'प्रताप' का काम रुका नहीं। इसी बीच ठाकुर लक्ष्मण सिंह चौहान का 'कुली प्रथा' नामक नाटक 'प्रताप' से छपकर आया, जिसे सरकार ने तुरंत जब्त कर लिया और प्रेस एक्ट के अंतर्गत 1916 को प्रताप प्रेस से एक हजाररुपये की जमानत मांगी गयी। कागज और कलम से अच्छी-खासी लड़ाई लड़ने के बाद अंततः जमानत दाखिल कर दी गयी।' 'कुली प्रथा' नाटक दूसरे देशों में प्रवासी भारतवासियों के शोषण और उनकी मांगें पूरी करने के लिए अभियान के तहत प्रकाशित किया गया था। इस पुस्तिका के जरिये शासन से अनुरोध किया गया था कि उनके अधिकारों की रक्षा की जाये। अनुरोध ब्रिटिश शासन के लिए आघात बना। उसने नाटक वाली पुस्तिका जब्त कर ली। संचालक बिना किसी विचलन के अपने ध्येय में लगे रहे। 'प्रताप' में समाचार, अग्रलेख, लेख के साथ-साथ देश-प्रेम पर आधारित कविताएं भी प्रकाशित होती थीं। इसी के तहत 19 जून, 1916 के अंक में 'दासता' नामक कविता छपी। अंग्रेज शासन की नजर पड़ी तो उस कविता को राजद्रोहपूर्ण बताकर 'प्रताप' पर जमानत की सजा लगा दी। संचालकों ने 'न्यू इंडिया' और 'कामरेड' अखबार का उदाहरण देते हुए जमानत न मांगे जाने की आज्ञा को निरस्त कर 2 नवंबर, 1916 को जमानत स्वीकार कर ली। घाटे के बावजूद 'प्रताप' के तेवर में किसी तरह की कमी नहीं आयी। उसमें देश-प्रेम पर केन्द्रित जोश भरी कविताएं और लेख छपते रहे। जमानत और जब्ती का जिस तरह से सिलसिला आगे बढ़ा उसी गति से लेखकों की कलम की रफ्तार तेज होती गयी। 22 अप्रैल, 1918 के 'प्रताप' में नानक सिंह 'हमदम' द्वारा रचित 'सौदा-ए-वतन' शीर्षक की कविता प्रकाशित हुई तब शासन बौखला गया। उसने उसे राजद्रोहपूर्ण घोषित किया। 1916 में प्रताप द्वारा एक हजार रुपये की जमा की हुई जमानत जब्त कर ली गयी और आदेश दिया गया कि पहली जून 1918 की राजकीय विज्ञप्ति (जो 6जून को प्रताप कार्यालय में प्राप्त की गयी थी) के अनुसार पुनः जमानत दाखिल की जाये।' जमानत जब्त होने से 'प्रताप' को गहरा धक्का लगा। दोबारा जमानत जमा करने तक अखबार का प्रकाशन जारी रखना संभव नहीं था और तत्काल एक हजार रुपये का इंतजाम भी नहीं हो सकता था। उसने नयी नीति अपनाते हुए पाठकों की 'अदालत' में जाने का फैसला किया, जिन्होंने 'प्रताप' को लोकप्रियता के शिखर पर पहुंचा दिया था। 'प्रताप' के अगले ही अंक में उसने अपनी विपदा को निम्न पंक्तियों में व्यक्त किया, *'लगा घाव है अब कठिन रह-रह के होती चमक। रहा काम अब आपका मरहम रखिये या नमक।'* इसी अंक के साथ 'प्रताप' का प्रकाशन बंद हो गया। लेकिन चकित करने वाली बात यह कि पाठकों ने चंदा जमा करके जमानत के लिए धन एकत्र कर दिया। 8 जुलाई, 1918 को अखबार का अगला अंक आया, जिसमें 'प्रताप' की दिलेरी और सरकार की दमन नीति का पूरा ब्यौरा छापा गया। पाठकों-ग्राहकों और आम जनता पर इसका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि लोग मुक्तहस्त से 'प्रताप' को आर्थिक सहयोग भेजने लगे और देखते-देखते आठ हजार रुपये का फंड एकत्र हो गया।

पाठकों का इस तरह सहयोग मिलते ही विद्यार्थी जी ने 'प्रताप' की मिलकियत को सार्वजनिक सम्पत्ति घोषित कर दिया। इस प्रक्रिया के तहत ट्रस्ट का गठन किया गया। यह देखकर कानपुर के जिला अधिकारी ने चौंका देने वाला आदेश दिया, ''मैं 'प्रताप' से जमानत न लेने का कोई कारण नहीं देखता। नये प्रिंटर (अर्थात श्रीयुत शिव नारायण मिश्र) का इस बदनाम (Notorious) पत्र से पुराना संबंध है। बीस मास के भीतर पत्र को दो बार चेतावनी दी गयी और एक बार उसकी 1000 रुपये की जमानत जब्त की गयी। पहले प्रिंटर (अर्थात गणेश शंकर विद्यार्थी) ने, जो कमेटी (ट्रस्ट) में हैं, हाल में (कानपुर में) होने वाली हड़तालों में विशेष भाग लिया है और आजकल के उपद्रव के समय में यह आवश्यक है कि समाचार-पत्रों पर कड़ा अंकुश रखा जाये। इसलिए मैं 2000 रुपये की जमानत मांगता हूं और प्रकाशक को चेतावनी देता हूं कि उसे पत्र प्रकाशित करने की अनुमति उस समय तक नहीं है, जब तक कि वह मेरी अदालत में जमानत दाखिल न कर दे।'' 'प्रताप' ने नियम की धज्जियां उड़ाने वाले इस आदेश का भी पालन किया। दो हजार रुपये की जमानत जमा कर दी। इसी के साथ अब 'प्रताप' पाठकों का अखबार हो गया। इस घटना के बाद नये तरह की मुसीबत सामने थी। अभी तक महज पुलिस के छापों-तलाशियों और जमानत-जब्ती का ही सिलसिला चल रहा था। नये घटनाक्रम में मानहानि के मुकदमों और जेल-यात्राओं का दौर शुरू हो गया। इस नयी चुनौती के तहत विद्यार्थी जी ने अपने जीवन में पांच जेल-यात्राएं कीं। इनमें तीन उन्हें 'प्रताप' की पत्रकारिता और दो राजनीतिक भाषणों के कारण करनी पड़ीं। 'प्रताप' पर पहला अदालती मामला रायबरेली गोलीकांड का आंखों देखा विवरण छापने के कारण चला। 'विद्यार्थी जी सामंती बर्बरता के विरुद्ध किसानों के संघर्ष के लेखनी से भी समर्थक थे (उनकी पहली जेल-यात्रा का कारण सामंती अत्याचार के विरुद्ध उनकी एक रपट बनी थी) और सक्रिय भागीदार भी। लेकिन साथ ही वे कानपुर के औद्योगिक परिवेश में रहते हुए मजदूर वर्ग की नारकीय स्थिति और उसकी संगठित शक्ति की अपरिमित संभावनाओं से भी परिचित हो चुके थे।

भूलना नहीं होगा कि कानपुर में वाजिब मजदूरी के सवाल को उन्होंने 1919 में उठाया था और पचीस हजार मजदूरों की हड़ताल का सफल नेतृत्व किया था।' अपनी इन्हीं भावनाओं के तहत पत्रकारिता करने वाले 'प्रताप' को सात साल की यात्रा में पाठकों का अपार प्रेम मिला। अंग्रेज सरकार की छापों, जब्ती, चेतावनी का संचालकों पर लेस मात्र का असर नहीं पड़ा। इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि 1919 में इस साप्ताहिक की प्रसार संख्या 9 हजार थी। इस तरह साप्ताहिक 'प्रताप' की यात्रा 23 नवंबर, 1920 को दैनिक तक पहुंची। 'साप्ताहिक की तरह ही दैनिक 'प्रताप' भी राष्ट्रवादी था ओर निरंकुश तथा अत्याचारी शासकों का घोर विरोधी भी। उसकी यह नीति ही उसका सबसे बड़ा 'अपराध' था, जिसका कुपरिणाम उसे भुगतना पड़ा। सरकार और नौकरशाही के अतिरिक्त देशी रियासतों की भी उस पर कृपा हुई और सात-आठ रियासतों ने अपने राज्य में 'प्रताप' का जाना बंद कर दिया।'

इस समय तक 'प्रताप' हिन्दी प्रदेश के किसानों व मजदूरों के अनवरत संघर्ष का वाहक बन गया था। यह वह समय था जब उत्तर भारत में ताल्लुकेदारों द्वारा किसानों का शोषण चरम पर था। किसान आजिज आ चुके थे। अवध क्षेत्र के अनेक जिलों में एकजुट होकर किसानों ने विद्रोह कर दिया। रायबरेली में जमींदार सरदार वीरपाल सिंह ने किसान आंदोलन को कुचलने के लिए गोली चलवा दी। इसमें कई किसान मारे गये और बहुत से जख्मी हो गये। किसानों की गिरफ्तारियां होने लगीं। सरकार और जमींदारों के दमन के इस प्रवाह में विद्यार्थी जी की लेखनी आग उगल रही थी। उन्होंने किसानों पर हुए अत्याचार की तुलना अमृतसर के जलियांवाला बाग हत्याकांड से की। दैनिक 'प्रताप' के 13 जनवरी, 1921 के अंक में 'डायरशाही और ओडायरशाही' नामक अग्रलेख लिखा। 'प्रताप' का किसानों का साथ देने से जहां सरकार की कुदृष्टि उस पर पड़ी वहीं स्थानीय ताल्लुकेदार भी उससे खफा हो गये। अखबार में प्रकाशित सामग्री को अपने लिए अपमानजनक मानकर वीरपाल सिंह ने दैनिक 'प्रताप' पर मानहानि का मुकदमा कर दिया। इस मुकदमे ने बड़ा राजनैतिक रूप धारण कर लिया। बचाव पक्ष से 50 गवाह प्रस्तुत हुए। इनमें पं. मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, श्रीकृष्ण मेहता एवं डॉ. अवन्तिका प्रसाद जैसे राष्ट्रीय नेता भी शामिल थे। सेशन अदालत तक मामला

गया, लेकिन फैसला 'प्रताप' के विरुद्ध रहा। ''संपादक गणेश शंकर और प्रकाशक शिव नारायण मिश्र को तीन-तीन माह की कैद तथा पांच-पांच सौ रुपया जुर्माने का दंड मिला। जिन दिनों रायबरेली मानहानि का मुकदमा विद्यार्थी जी और मिश्र जी पर चल रहा था, नौकरशाही ने 'प्रताप' पर एक और प्रहार किया। 27 अप्रैल, 1921 को गणेश शंकर विद्यार्थी और शिव नारायण मिश्र से क्रमशः पांच-पांच हजार रुपये के मुचलके और दस-दस हजार रुपये की दो जमानतें देने का आदेश दिया गया। इसका कारण बताया गया कि रायबरेली और फैजाबाद के किसानों की अशांति के संबंध में लेख लिख और प्रकाशित कर राजद्रोह का प्रचार किया गया तथा सम्राट की प्रजा में द्वेष फैलाया गया।'' अंग्रेज सरकार ने संपादक विद्यार्थी जी और मुद्रक शिव नारायण मिश्र के विरुद्ध आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत दफा 108 में सम्मन जारी किया। सम्मन मिलते ही हालात पर विचार करने के लिए 'प्रताप' के ट्रस्टियों ने बैठक की, जिसमें विद्यार्थी जी ने संपादक पद से इस्तीफा दे दिया। वह नहीं चाहते थे कि उनकी वजह से 'प्रताप' को 15 हजार रुपये का बड़ा जोखिम उठाना पड़े। प्रकाशक शिव नारायण मिश्र ने सम्मन मिलने के तीन दिन पहले ही संबंधित मजिस्ट्रेट के यहां सूचना दे दी कि वह 'प्रताप' के मुद्रक और प्रकाशक नहीं रहे। उनकी घोषणा स्वीकार कर ली गयी। अगले ही दिन कृष्णदत्त पालीवाल ने मुद्रक एवं प्रकाशक के रूप में नया घोषणा-पत्र दाखिल कर दिया। ऐसा करने से साप्ताहिक 'प्रताप' एक भी दिन बंद नहीं हुआ। विद्यार्थी जी और शिव नारायण मिश्र ने 'प्रताप' के हितों की रक्षा के लिए अपने को अलग कर लिया, जिससे उनकी ओर से दफा 108 के तहत मुचलके भरने, जमानत जमा करने या नहीं करने पर भी 'प्रताप' की सम्पत्ति पर आंच न आये। फिर भी उनका मत था कि उन पर लगाये गये आरोप उन्हें दफा 108 के तहत अभियुक्त बनाने के लिए उपयुक्त नहीं थे। इसी कारण रायबरेली की अदालत में (जिसमें उन पर मानहानि का मुकदमा चल रहा था) उन्होंने अपना बचाव करना उचित नहीं समझा। 'प्रताप' के ट्रस्टियों ने विद्यार्थी जी का त्याग-पत्र स्वीकार नहीं किया। इसके बदले उनका एक साल का अवकाश स्वीकृत कर दिया। ''रायबरेली अदालत में जब गणेश शंकर विद्यार्थी को राजद्रोहपूर्ण एवं भड़काने वाले लेख लिखने पर प्रथम बार दंडित किया गया था तब भी उन्हें केवल एक घंटे बाद ही रिहा करा लिया गया था। उनके मित्रों एवं शुभचिन्तकों ने उनकी तुरंत जमानत जमा करा दी थी। परंतु कानपुर पहुंचने पर

गणेश शंकर विद्यार्थी को दफा 108 के अंतर्गत रायबरेली से सम्मन मिला तो वह उसकी अवहेलना करने पर उतारू हो गये। उन्होंने तुरंत संबंधित मजिस्ट्रेट को लिखा कि 23 मई, 1921 को जब उनकी जमानत ली गयी थी तब उनसे पूछा नहीं गया था। उन्होंने जिला अधिकारी से निवेदन किया कि वह उस जमानत को निरस्त समझें। वह जेल जाने को भी उद्यत हो गये। शुभचिन्तकों के समझाने-बुझाने के बावजूद उन्होंने 16 अक्टूबर, 1921 को अपने को स्थानीय अधिकारियों को सुपुर्द कर दिया।''

दरअसल जाने-अनजाने विद्यार्थी जी ने उस समय वही काम किया जो अंग्रेज शासन चाहता था। रायबरेली मुकदमे में व्यस्त होने के कारण विद्यार्थी जी ने दैनिक 'प्रताप' का संपादन छोड़ दिया। इस दौरान कृष्णदत्त पालीवाल संपादक की जिम्मेदारी निभा रहे थे। मुकदमे के दौरान परिस्थितियां विषम होती चली गयीं। मामला इतना खर्चीला साबित हुआ कि दैनिक 'प्रताप' को बचाया नहीं जा सका। आखिरकार 6 जुलाई, 1921 का अंक निकालने के बाद 'प्रताप' के संचालकों को बेमन दैनिक संस्करण बंद करने का फैसला लेना पड़ा। अंग्रेज शासन यही तो चाहता था। भारत में अंग्रेजी शासन की चापलूसी करने वाले एंग्लो इंडियन अखबार और लंदन के सभी समाचार-पत्र रायबरेली हत्याकांड को लेकर दहशतजदा थे। उन्हें इसकी आड़ में क्रांति की आशंका दिख रही थी। ऐसे में भारतीय अंग्रेज सरकार व कानपुर के अधिकारियों ने मौके का लाभ उठाते हुए विद्यार्थी जी को 25 अक्टूबर को लखनऊ के केन्द्रीय कारागार पहुंचा दिया। रायबरेली मुकदमे में उन्हें तीन माह की सजा मिली। इसलिए लखनऊ की उच्च अदालत में उनकी अपील 1 फरवरी, 1922 तक सुनवाई के लिए पड़ी रही। विद्यार्थी जी को कारागार में ही सूचना मिली कि उनकी अपील निरस्त हो चुकी है और उनकी सजा बहाल रही, लेकिन उनके वकील ने सूचित किया कि चूंकि वह सजा दफा 108 के तहत प्रदत्त सजा के समानांतर ही चलेगी इसलिए अपील निरस्त होने का किसी तरह का प्रभाव नहीं पड़ेगा। सजा पूरी करने पर विद्यार्थी जी जिला कारागार लखनऊसे 22 मई, 1922 को रिहा किये गये। इस अवधि में उन्हें आरंभ में दस दिन कानपुर जिला जेल, फिर केन्द्रीय कारागार लखनऊ तो अंत में जिला जेल लखनऊ में अन्य सत्याग्रही साथी पं. मोतीलाल नेहरू, पं. जवाहरलाल नेहरू, पुरुषोत्तम दास टंडन, आचार्य कृपलानी आदि के साथ रखा गया। इस पहली जेल-यात्रा के दौरान विद्यार्थी जी ने जेल डायरी लिखी। इसी के आधार पर 'जेल जीवन की झलक' नाम से संस्मरणपरक लेखमाला 'प्रताप' के बारह अंकों में लिखी। 'दोनों लोगों पर दो-दो अभियोग थे, अतः उन पर अलग-अलग 3-3 महीने की सादी कैद और पांच-पांच सौ रुपये जुर्माने की सजा सुनाई गयी। इसके अलावा मुकदमे के ही दौरान दोनों सज्जनों से सरकार ने नेकचलनी के नाम पर एक साल के लिए पांच-पांच हजार के मुचलके और दस-दस हजार की जमानतें भी मांगी थीं। इसी सिलसिले में पहली बार 30 जुलाई, 1921 को कुछ घंटों के लिए और दोबारा 16 अक्टूबर, 1921 से 22 मई, 1922 तक विद्यार्थी जी को जेल में रहना पड़ा।' रायबरेली मानहानि केस में प्रताप को हार का सामना अवश्य करना पड़ा। काफी धन और समय भी लगा। लेकिन वह अपने इस उद्देश्य में सफल रहा कि रायबरेली हत्याकांड के जरिये उसने ब्रिटिश उपनिवेशवाद और देश के भीतर की जनविरोधी सामंती ताकतों की साठ-गांठ का सच पूरी दुनिया के सामने उजागर कर दिया। लोग-बाग किसानों की बदहाली से परिचित हुए। एक तरह से 'रायबरेली केस की जमानत और मुचलका रद्द करवाकर गणेश शंकर विद्यार्थी जेल गये। वह हारकर भी जीत गये। 'प्रताप' के आईने में विदेशी हुकूमत की निर्लज्जता खुलकर सामने आ गयी। उसके बाद हुकूमत हर तरह की 'थेथरई' पर उतरी। गणेश शंकर के लिए जेल घर-आंगन बन गया। लेकिन 1931 तक साप्ताहिक 'प्रताप' कभी बंद नहीं हुआ। 1923-1931 तक 'प्रताप' ने हिन्दी पत्रकारिता का फिर एक नया इतिहास रचा—पहले से सर्वथा नया तथा रोमांचक! तूफान उठाने से लेकर बलिदान देने तक का ऐसा इतिहास, जो आज तक अपने में अकेली मिसाल है।'

'प्रताप' को दूसरा मामला मैनपुरी मानहानि केस (12 अगस्त, 1926 से 17 नवंबर, 1926) लड़ना पड़ा। ''यह मामला शिकोहाबाद के थानेदार की रिश्वतखोरी की खबरें छापने के कारण बना था और इसमें भी अभियुक्त संपादक और मुद्रक-प्रकाशक ही थे। संपादक अभी भी विद्यार्थी जी थे, लेकिन मुद्रक-प्रकाशक इस बार मिश्र जी नहीं बल्कि सुरेन्द्र शर्मा थे। 41 गवाहों के बयान दिये गये, लेकिन दोषी इस बार भी अदालत को 'प्रताप' के संपादक-प्रकाशक ही नजर आये। दोनों अभियुक्तों को चार-चार सौ रुपये जुर्माना और छह-छह महीने जेल की सजा सुनायी गयी। फैसला सुनकर विद्यार्थी जी ने मजिस्ट्रेट से कहा—हमारे साथ घोर अन्याय हुआ है। हम जुर्माना न देकर जेल जाने को तैयार हैं ताकि दुनिया आपके इनसाफ का नमूना देख ले।'' इस मानहानि के मामले में विद्यार्थी जी और सुरेन्द्र जी जेल चले गये। लेकिन पाठकों को उनका जेल जाना मंजूर नहीं था। ऐसी हालत में उन्होंने जुर्माने की रकम अदा कर संपादक-प्रकाशक को 24 घंटे में ही जेल से छुड़ा लिया। साथ ही मामले की अपील सेशन अदालत में करने का फैसला लिया गया। उक्त अदालत से भी वही फैसला बहाल रहा तब उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया गया, जिसने दोनों को निर्दोष करार देते हुए बाइज्जत बरी कर दिया।

'प्रताप' पर तीसरा मानहानि का मामला

1928 में साईंखेड़ा मानहानि केस के नाम से चला, जो एक महंत व उसके चेले के ढोंग एवं कुकृत्यों का भंडाफोड़ करने वाला लेख प्रकाशित करने पर बना था। यह मामला आगे बढ़ता उसके पहले ही 'प्रताप' के कुछ शुभच्छुओं की मध्यस्थता से यह बीच में ही समाप्त हो गया। विद्यार्थी जी सही तथ्य प्रकाशित होने पर अपने पक्ष को लेकर जितना अधिक अडिग रहते थे उसी तरह गलत तथ्य प्रकाशित होने पर खेद प्रकाश छापने में भी लेश मात्र संकोच नहीं करते थे। एक तरह से अखबारों में भूल सुधार की प्रक्रिया भारतीय पत्रकारिता में उसी दौरान शुरू हुई। साईंखेड़ा मामले के दौरान इलाहाबाद की नैनी जेल में कैदियों के साथ हो रहे दुर्व्यवहार को लेकर प्रताप में एक नोट छपा, जिसे लेकर इलाहाबाद उच्च न्यायालय में मानहानि का नोटिस भेजा। इस मामले में चूक प्रताप के ही संपादन विभाग की थी। ऐसे में बिना किसी देरी के 'प्रताप' ने अपनी भूल स्वीकार कर ली और मात्र खेद प्रकाश से ही मामला समाप्त हो गया। इन मामलों से साफ हो जाता है कि विद्यार्थी जी व 'प्रताप' महज हवा में ब्रिटिश उपनिवेशवाद विरोधी लड़ाई नहीं लड़ रहे थे बल्कि ऐसे सभी तत्त्वों को निशाना बना रहे थे, जो सामंती, नौकरशाही व पाखंडवाद के सरगना के रूप में देश की जनता का शोषण और उत्पीड़न कर रहे थे।

रायबरेली और मैनपुरी वाले मामलों में तथा दफा 108 के जमानत-मुचलकों के सिलसिले में विद्यार्थी जी को तीन जेल-यात्राओं के अलावा दो बार 10-10 महीने की जेल-यात्राएं (नैनी व हरदोई जेल) उन्हें कांग्रेस नेता की हैसियत से फतेहपुर और कानपुर में व्याख्यान देने के कारण काटनी पड़ीं। लखनऊ जेल-यात्रा के दौरान 1922 में उन्होंने फ्रांस की राज्य-क्रांति वाली पृष्ठभूमि की विक्टर ह्यूगो की कृति 'नाइंटी थ्री' का 'बलिदान' नाम से अनुवाद किया तो अंतिम जेल-यात्रा में अपनी एक कहानी 'हाथी की फांसी' लिखी। विद्यार्थी जी, लोकमान्य बाल गंगाधन तिलक की राह के अनुगामी थे। तिलक के बाद राष्ट्रीय आंदोलन व कांग्रेस के मंच पर गांधी के नेतृत्व को स्वीकार अवश्य किया, लेकिन उनकी सोच को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया। इसी कारण अहिंसा के सवाल पर उन्होंने कहा कि 'मैं नॉन-वायलेंस (अहिंसा) को शुरू से अपनी पॉलिसी मानता रहा हूं, धर्म नहीं मानता रहा। मैंने अपने व्याख्यान में यह दिखाया कि मनसा और कर्मणा, अहिंसा साधारण मनुष्यों का सहज स्वभाव नहीं है और इसीलिए राजनीतिक संग्राम में उसे अपना साधारण हथियार नहीं बनाया जा सकता।' यह बात उन्होंने 1922-23 के दौरान फतेहपुर में सभापति पद से दिये गये अपने भाषण के सिलसिले में अदालत के सामने कही थी। इसी मामले में दफा 124-ए के अभियोग में उन्हें एक साल की सजा और 100 रुपये जुर्माना हुआ था। एक तरह से वह गांधी के अहिंसक नेतृत्व और भगत सिंह के क्रांतिकारी विचारों के बीच खड़े थे। 'गणेश शंकर विद्यार्थी ने देश की आजादी का जो सपना अपने मन में संजो रखा था, उसका वितान कांग्रेस के मध्यमार्गी नेतृत्व से बहुत आगे तक तना था। कांग्रेस के पूंजीवादी मानसिकता के नेतागण जहां देशी सामंतों के अत्याचारों की अनदेखी करने में ही अपना हित समझते थे, गणेश शंकर विद्यार्थी उनसे टकराते थे और लहूलुहान होते थे, लेकिन हार नहीं मानते थे। रायबरेली के सामंत द्वारा स्थानीय किसानों पर किया गया गोलीकांड हो, चंपारण के नीलहे गोरों के अत्याचार हों या बिजोलिया के गरीब किसानों का शोषण—सर्वत्र गणेश जी अपना सीना खोलकर आगे खड़े दिखायी दिये।' इसी कारण 'प्रताप' अपने सफर में किसानों एवं मजदूरों की आवाज बना। उनके आंदोलनों में हमराही की भूमिका में खड़ा हुआ। अपने निर्भीक लेखन, राष्ट्रीय आंदोलन और किसान आंदोलन में भागीदारी के चलते विद्यार्थी जी को सत्ता के कोप और प्रताड़ना का सामना करना पड़ा।

विद्यार्थी जी प्रेस की आजादी के कट्टर पक्षधर थे। इसके लिए तीन बार उन्हें जेल जाना पड़ा। अनेक बार 'प्रताप' पर छापे पड़े। जमानतें मांगी गयीं और अखबार का प्रकाशन स्थगित करना पड़ा। ''शुरू के 18 सालों के दौरान लगभग 45 हजार रुपये विद्यार्थी जी और 'प्रताप' को जमानत के बतौर भरने पड़े। प्रेस की आजादी और अखबरों के सरकारी दमन का जब-जब सवाल उठा, विद्यार्थी जी ने उसका प्रखर विरोध किया, चाहे वह उनके अपने अखबार का मामला हो या अन्य अखबारों का। प्रेस की आजादी के सवाल पर उनका 'दूसरा कृपाण' शीर्षक लेख 29 मार्च, 1914 को प्रकाशित हुआ था। प्रेस ऐक्ट की तलवार तो देसी अखबारों पर लटक ही रही थी कि अचानक अखबारों की आवाज को और अधिक दबाने के इरादे से 'कंटेम्प्ट ऑफ कोर्ट' का कानून लाद दिया गया। उसी नये कानून को विद्यार्थी जी ने इस लेख में दूसरा कृपाण कहा है।'' विद्यार्थी जी कहते थे कि पत्रकार की समाज के प्रति बड़ी जिम्मेदारी है। वह जो लिखे, प्रमाण और परिणाम का विचार रखकर लिखे और अपनी गति-मति में सदैव शुद्ध और विवेकशील रहे। पैसा कमाना उसका ध्येय नहीं, लोकसेवा उसका ध्येय है। अपनी शहादत के महज दो सप्ताह पहले विद्यार्थी जी हरदोई जेल (25 मई, 1930 से 9 मार्च, 1931 तक) से दफा 117 के तहत एक साल की सख्त कैद की सजा काटकर बाहर आये थे। यह सजा कानपुर में आयोजित कांग्रेस के प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन में प्रदेश के प्रथम डिक्टेटर के नाते दिये गये भाषण के कारण काटनी पड़ी थी। यह उनकी पांचवीं जेल-यात्रा थी। जेल से आने के बाद वह 'प्रताप' के महज एक अंक का संपादन कर पाये थे कि इसी बीच अंग्रेज सरकार ने क्रांतिकारी भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरु को फांसी के फंदे पर चढ़ा दिया। यह समाचार सुनकर गणेश जी काफी बेचैन हो गये। देश के अनेक नगरों में दंगा-फसाद हो रहा था।

कानपुर में भी दंगा भड़क गया। पुलिस इन दंगें को रोकने की बजाय मूक बनी रही। यह देखते हुए विद्यार्थी जी दंगे की आग शांत कराने के लिए मैदान में कूद पड़े। अपने कुछ साथियों के साथ हिन्दू इलाके में फंसे मुस्लिमों को निकालते तो मुस्लिम इलाकों के बीच फंसे हिन्दुओं को निकालते। यही प्रयास करते हुए वह 25 मार्च को कुछ फसादी तत्त्वों का शिकार बन गये और देश के नाम पर शहीद हो गये। देश और समाज के प्रति यह उनकी निर्भीक प्रतिबद्धता ही थी, जिसके चलते वह दिन-रात घूमकर कानपुर में भड़के साम्प्रदायिक दंगे की आग को बुझाने की कोशिश करते साम्प्रदायिक उन्मादी भीड़ के हाथों मारे गये। उनकी शहादत का समाचार कराची में चल रहे कांग्रेस के अधिवेशन में पहुंचा तो सभी दंग रह गये। अखबारों ने विद्यार्थी जी को श्रद्धांजलि देते हुए लेख प्रकाशित किये तो कुछ ने क्षोभ व्यक्त किया। गांधीजी ने 'प्रताप' के संयुक्त संपादक को तार भेजा—''कलेजा फट रहा है तो भी गणेश शंकर की इतनी शानदार मृत्यु के लिए शोक-संदेश नहीं दूंगा। उनका परिवार शोक-संदेश का नहीं, बधाई का पात्र है। इसकी मिसाल अनुकरणीय सिद्ध हो।'' अपने पत्र 'यंग इंडिया' में लिखा, 'उनके अनोखे दृष्टांत से हमें सब्र की प्रेरणा मिले। कानपुर की इस शर्मनाक घटना से हमें सबक सीखना चाहिए, ताकि हम यह अनुभव कर सकें कि स्थानीय शांति-स्थापना के लिए यदि तीन सौ स्त्री-पुरुषों का भी बलिदान हो जाता तो ज्यादा महंगा नहीं था।' विद्यार्थी जी ने 'प्रताप' का संपादन करते हुए साहित्य, संस्कृति और राजनीति को राष्ट्रीय आंदोलन का घटक माना। एक उत्कृष्ट पत्रकार, ओजस्वी वक्ता और निर्भीक सेनानी के रूप में वह भारतीय स्वंत्रता आंदोलन के इतिहास में ऐसे स्तम्भ हैं, जिनसे आने वाली पीढ़ियां प्रेरणा लेती रहेंगी। 'प्रताप' के माध्यम से उनका योगदान सदैव स्मरणीय और प्रेरणाप्रद रहेगा। ❑

19 मार्च : जे. बी. कृपालानी पुण्य-तिथि : विनम्र स्मराणांजलि

गुलामी बापू की

❑ **आचार्य जे. बी. कृपालानी**

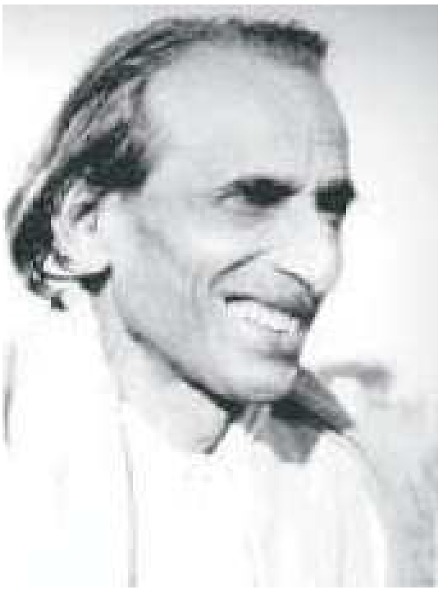

आज बापूजी की बात कहने लगा हूं, तो उससे पहले थोड़ी अपनी कहानी भी सुना दूं।

मैं बचपन से ही थोड़ा विद्रोही रहा हूं। घर में विद्रोह, पाठशाला में विद्रोह। शिक्षकों के साथ भी मेरे कई बार झगड़े हुए। दो बार तो मुझे कॉलेज से निकाल दिया गया था। नौकरियां बदलनी पड़ी हैं। इतना ही नहीं प्रांत भी बदलने पड़े हैं। मैं अपने मित्रों को भी कष्ट देता हूं, शत्रु की तो कोई बात ही नहीं। इसी कारण मुझे कोई अपने पास नहीं रखता।

आजकल क्रांति की बातें खूब होती हैं। जहां जाओ, वहां 'इंकलाब जिंदाबाद' की आवाज सुनाई देती है। परंतु उस जमाने में इंकलाब पुकारने वाला कोई नहीं था। मरने वाले थोड़े-से थे। शायद उन थोड़ों से एक मैं भी था।

हमको अहिंसा वगैरह में कोई भरोसा न था। पढ़ाई पूरी होते ही मैं अध्यापक बन गया। वह क्यों? दूसरों पर क्रांति की रंगत लगाने के लिए! सरकार मुझे वेतन देती थी और मैं सरकार के विरुद्ध बगावत फैलाता था। ऐसे समय में जब बापूजी आये, तब मैं बिहार के मुजफ्फरपुर में इतिहास पढ़ाता था।

बापूजी सन् 1914 में अफ्रीका से भारत आये और अपने लड़कों यानी अपने आश्रम के लड़कों को लेकर कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शांति निकेतन में उतरे थे। तब तक वे 'महात्मा' की उपाधि से विभूषित नहीं हुए थे। उन दिनों वे मिस्टर गांधी कहलाते थे। फिर भी वे एक विचित्र प्राणी तो थे ही। विचित्र प्राणी को देखने का किसका मन नहीं होता? मैं भी कौतूहलवश उनसे मिलने निकला।

उनका शरीर इतना छोटा और दुबला कि किसी को यह नहीं लग सकता था कि यहां कोई महापुरुष बैठा है। लेकिन दो चीजें उनको बाकी सबसे अलग कर देती थी। उनकी वाणी और आंखें। उनकी आंखों में कोई अद्भुत ज्योति थी। उनकी वाणी में

गांधीजी को पहली मुलाकात में ही मैं समझ गया कि यह आदमी जो काम हाथ में लेगा, उसे पूरा किये बिना छोड़ेगा नहीं। या तो काम को समाप्त कर डालेगा, या अपने को ही समाप्त कर डालेगा। इसके अलावा उस समय उनमें एक दूसरी शक्ति भी मुझे दिखायी पड़ी। वह है लोगों को अपनी ओर खींच लेने की शक्ति। इस आकर्षण का कारण यह था कि यह आदमी सर्वथा प्रामाणिक था। ऐसी एकाग्रता, दृढ़ता, प्रामाणिकता तथा विचारवत्ता वाला आदमी मैंने पहले कभी नहीं देखा।

अजब शक्ति। उनकी आवाज भारी नहीं थी तो भी ऐसा मालूम होता मानो मेघ गरज रहे हों। खूब विचार-विचार कर बोल रहे हों। ऐसा लगता था कि जो कुछ वे कह रहे हैं, उसे वे करके छोड़ेंगे। ऐसी ध्वनि उसमें सुनाई देती। इसी कारण उनका धीमा और मंदगति वाला शब्द प्रवाह भी बहुत प्रबल, शक्तिशाली लगता था।

उस समय बापू की पोशाक, आहार सब कुछ अलग था। आज जो गांधी टोपी घर-घर प्रख्यात हो चुकी है, वही गांधी टोपी वे उन दिनों पहना करते थे। पैर नंगे! आहार में मूंगफली। यहां आने से पहले वे फलाहार ही करते थे। यह उनका नियम था। यहां आकर देखा कि फलाहार बहुत महंगा पड़ेगा और महंगा आहार गरीब को कैसे ठीक पड़ेगा। इसलिए उन्होंने मूंगफली खाना शुरू किया। यह तो हुई उनकी बाहर की बात। अब सुनो भीतर की!

पहली मुलाकात में ही मैं समझ गया कि यह आदमी जो काम हाथ में लेगा, उसे पूरा किये बिना छोड़ेगा नहीं। या तो काम को समाप्त कर डालेगा, या अपने को ही समाप्त कर डालेगा। इसके अलावा उस समय उनमें एक दूसरी शक्ति भी मुझे दिखायी पड़ी। वह है लोगों को अपनी ओर खींच लेने की शक्ति। इस आकर्षण का कारण यह था कि यह आदमी सर्वथा प्रामाणिक था। ऐसी एकाग्रता, दृढ़ता, प्रामाणिकता तथा विचारवत्ता वाला आदमी मैंने पहले कभी नहीं देखा था। महापुरुष मैंने अनेक देखे थे, परंतु उनकी जैसी शक्ति मैंने कहीं भी नहीं देखी थी। उस समय के बहुत बड़े-बड़े नायकों ने देश की गरीबी के विषय में बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखी थीं, परंतु गरीबी क्या चीज है, यह भी नहीं जाना था। उन लोगों ने स्वदेशी के विषय में बड़े-बड़े उत्तेजक भाषण दिये थे, परंतु स्वदेशी कपड़ा कैसा होता है, यह कभी नहीं देखा था।

इस तरह अपनी पहली मुलाकात में ही मैंने अपने को उनके प्रति सौंप दिया था। इसका यह अर्थ नहीं है कि बापू की सभी बातें मुझे मान्य हैं। भई बिलकुल नहीं! बापू जब से आये हैं, संयम की बातें करते रहते हैं। मुझमें संयम है ही नहीं। इस प्रकार हमारे बीच में कुछ भी मेल नहीं है। मेरे जैसा विद्रोही चेला गांधी का दूसरा कोई नहीं होगा। इतना होते हुए भी मैंने उनकी तानाशाही मंजूर की है। इसका कारण बताता हूं।

दुनिया में तीन प्रकार के लोग होते हैं। पहले हैं, जो अपनी महत्ता और शक्ति को समझते हैं। उनमें दूसरों को ले चलने की भी शक्ति होती है। दूसरा प्रकार उन लोगों का है, जिनमें दूसरों को चलाने की शक्ति नहीं होती। वे स्वयं मानो अनुयायी होने के लिए ही बनाये गये होते हैं। इसलिए वे लोग दूसरे की महत्ता और शक्ति को समझ सकते हैं, स्वीकार कर सकते हैं तथा स्वीकार कर लेते हैं। तीसरे प्रकार के लोग वे होते हैं, जिनमें महत्ता और शक्ति नहीं होती। वे दूसरों की महत्ता और क्षमता को समझ नहीं सकते, स्वीकार भी नहीं कर सकते। ये लोग कुछ नहीं कर सकते। इनकी हालत त्रिशंकु जैसी बड़ी विचित्र होती है।

अक्सर लोग मुझसे पूछते हैं कि आप हिंसा में भरोसा रखने वाले हैं और गांधी ठहरे परम अहिंसावादी! गांधीजी ब्रिटिश राज्य में श्रद्धा रखने वाले हैं और आप उसका उच्छेद करने वाले। तो आपने उनका नेतृत्व किस प्रकार स्वीकार किया? मैंने इस आदमी में एक शक्ति देखी है। वह है या तो काम को अंत तक पहुंचाना या अपना अंत कर देना। इसलिए मैंने इनको अपना नेता स्वीकार किया है। दूसरे उनमें सच्चाई है। आज वे अहिंसा का समर्थन करते हैं, परंतु जिस क्षण इनको यह समझ में आ जायेगा कि अहिंसा से कुछ सिद्ध होने वाला नहीं है, उसी समय वे हिंसा के रास्ते पर चलकर ऐसी उग्रता से लड़ेंगे, वैसा दूसरा नहीं लड़ेगा। इस एक ही चीज ने मुझे उनके प्रति आकृष्ट किया है। इसीलिए मैं उनके साथ हूं। हिंसा के विषय में तो मेरा विश्वास हो गया है कि बापू को अहिंसा से डिगा देना, विचलित करना, एकदम असंभव है। उनको जिस क्षण यह लगा कि ब्रिटिश राज्य देश के कल्याण के लिए नहीं है, उसी समय उन्होंने उसके लिए ऐसे कठोर विशेषण प्रयुक्त किये हैं, जैसे लोकमान्य तिलक भी नहीं कर पाये थे। ब्रिटिश शासन को उन्होंने शैतानी राज्य कहा और वह भी इतने जोर से कि फिर तो पूरा देश उसको शैतान कहने लगा। नन्हें बच्चे भी उसे शैतान सरकार कहते तो भी उनको कोई पकड़ता नहीं था।

उनके जैसा काम करने वाला और काम लेने वाला अब तक मैंने नहीं देखा। वे छोटे-छोटे कामों में भी अपना प्राण होम करने के लिए तैयार हो जाते। अपने प्राण हथेली पर रखकर घूमने वाला मैंने उन जैसा कोई दूसरा नहीं देखा। अपने प्राणों को संकट में डालकर उनको यह नहीं लगता था कि वे कोई महान त्याग कर रहे हैं। छोटे-छोटे कामों में भी वे बड़े-बड़े कामों को समाया हुआ समझते थे।

वे टट्टी साफ करते, हरिजनों का काम करते और मानते कि वे देश का उद्धार कर रहे हैं। जिस काम को कुछ एक लोग 'ओल्ड डेम्स वर्क' यानी पुरानी बुढ़ियाव का काम कहते थे, उस चरखे में भी वे देश का उद्धार देखते थे। कोई भी छोटा काम उनको जरा भी छोटा नहीं लगता था। उसमें तो उनको स्वराज्य के दर्शन होते।

हम लोग आत्मा में परमात्मा का दर्शन करना कहते हैं, उसी प्रकार वे उन चीजों में स्वराज्य के दर्शन करते। इसी कारण उनके साथ कोई प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता था। मुझे तो यह लगता है कि उनकी फिलॉसफी का एक महत्त्वपूर्ण अंग यह है कि उसने कहीं भी प्रतिस्पर्धा के लिए कोई जगह ही नहीं छोड़ रखी थी। तुम एक बंदूक रखोगे तो सामने वाला दो बंदूक ले आयेगा। लेकिन यदि तुम अहिंसक बन जाओगे, बंदूक ही नहीं रखोगे तो सामने वाला तुमसे होड़ करने, लड़ने भला क्या लेकर आयेगा? ❑

बा-बापू : 150वीं जयंती पर विशेष

'बा'
मिली और गांधी परिवार

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं।–संपा.

मिली लंदन में बीमार रहती थी। पोलक और मिली का विवाह लगभग तय था। जब पोलक के पिता को पता चला कि मिली अपनी अस्वस्थता के बावजूद दक्षिण अफ्रीका जा रही है। उन्होंने मि. गांधी को लिखा कि आप पोलक और मिली को समझाकर विवाह को तब तक स्थगित करा दें जब तक मिली स्वस्थ न हो जाये। मिली का स्वास्थ्य ऐसा नहीं कि वह औपनिवेशिक संघर्षपूर्ण जीवन का सामना कर सके। गांधी ने सीनियर पोलक को लिखा अगर मिली आ रही है तो आ जाने दीजिए। अगर किसी लड़की का स्वास्थ्य लंदन में ठीक नहीं रहता तो उसे दक्षिण अफ्रीका की शीतोष्ण जलवायु में आकर रहना ही चाहिए। यहां के सुहावने वातावरण और आत्मीय देखभाल में रहकर उसके शरीर में ताकत आ जायेगी। दूसरा पत्र मिली को लिखा, तुम्हारा हमारे घर में स्वागत है, हम तुम्हारी देखभाल अच्छी तरह करेंगे। तुम्हारा वाग्दत्त पहले से हमारे साथ है। और भी जल्दी स्वास्थ्य लाभ होगा।

मिली 30 दिसंबर, 1905 को सवेरे छह बजे जप्पी स्टेशन पर उतरी। गांधी और पोलक स्टेशन पर स्वागत के लिए तैयार थे। जब पोलक और मिली एक दूसरे से मिले तो गांधी दूसरी तरफ चले गये थे। वे दोनों काफी देर एक दूसरे की ऊष्मा अपने-अपने अंदर भरते रहे।

मिली को कस्तूरबा का आठ कमरों वाला घर पसंद आया था। घर में मि. गांधी, कस्तूरबा, तीन बेटे, मणिलाल, रामदास और देवदास थे। एक अंग्रेज था जो टेलीग्राफ विभाग में काम करता था। पोलक था और एक भारतीय नौकर था। बाहर कसूरबा का पसंदीदा छोटा-सा बगीचा था। मिली के आने के अगले दिन ही मोहनदास मिली और पोलक को विवाह के लिए मजिस्ट्रेट की अदालत में ले गये। विवाह के रजिस्ट्रार के सामने सारे पत्राजात रखे। उसने उन्हें परखा। लेकिन अचानक ही वह माफी मांगकर गायब हो गया। मिली ओर पोलक के लिए नस्लवाद का वह पहला अनुभव था। कचहरी बंद होने का समय नजदीक आने लगा तो मि. गांधी चीफ मजिस्ट्रेट के पास गये। वे उसे जानते थे। उन्होंने उसे पूरा वाकया बताया। मजिस्ट्रेट खूब हंसा। दरअसल ट्रांसवाल के कानून के अनुसार अश्वेत और श्वेत की शादी अवैध थी। जो अफसर इस तरह बेमेल शादी कराता था उस पर जुर्माना और सजा का प्रावधान था। रजिस्ट्रार मि. गांधी के सामने कुछ कह तो नहीं पाया था इसलिए चुपचाप माफी मांग के खिसक गया था। वह समझा था कि पोलक और मि. गांधी की नजदीकी है इसलिए वह भी अश्वेत होगा। उन्होंने मजिस्ट्रेट को याद दिलाया कि पिछली बार जब पोलक के पिता लंदन से आये तो उन्हें आपसे मिलवाया था। मजिस्ट्रेट को पूरी बात याद थी। सब लोग बहुत हंसे, जरा से भ्रम के कारण सब लोगों को बेवजह परेशानी हुई। यह घटना शेक्सपीरियन कॉमेडी की तरह हो गयी थी। मि. गांधी और मजिस्ट्रेट के कारण पोलक और मिली विवाह सूत्र में अंततः बंध ही गये। जब मोहनदास ने घर आकर यह घटना सुनाई तो सबको प्रहसन की तरह लगी, सब हंस दिये। लेकिन इस बात का ध्यान आते ही कि इस कानून में नस्लवाद निहित है, सब खामोश हो गये।

शाम को मि. गांधी, मिली और पोलक निकट भविष्य में आने वाली समस्याओं के बारे में सोचने बैठे। पहली समस्या बच्चों की

पढ़ाई की थी। बच्चे स्कूल न जाकर अपने बापू से पढ़ते थे। सवेरे बच्चों को साथ दफ्तर ले जाना और दफ्तर से लौटने पर उनके द्वारा किया काम जांचना। मिली को यह तरीका समझ नहीं आता था। कस्तूर का कहना था बच्चा जैसे घर का अनुशासन और परंपराएं सीखता है उसी तरह वह स्कूल के नियम-कायदे सीखता होगा। अंत में जब बच्चों के बापू स्कूल भेजने के लिए तैयार नहीं हुए तो मिली ने उन्हें पढ़ाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। तीनों बच्चों को वह अंग्रेजी पढ़ना-लिखना, गणित, आलेखन और आरंभिक व्याकरण पढ़ाने लगी। समय मिलने पर गुजराती मोहनदास पढ़ा देते थे। वैसे बच्चे बा-बापू से गुजराती में ही बोलते बतियाते थे। कस्तूरबा अंग्रेजी न जानने के कारण बच्चों के भविष्य के बारे में मां होने के बावजूद, उन तीनों की चर्चा में हिस्सा नहीं ले पा रही थी।

पहले दिन तो मिली और कस्तूरबा अजनबी की तरह रहे थे। मोहनदास और पोलक के दफ्तर चले जाने के बाद दोनों महिलाओं के बीच अबोला हो जाता था। उस वक्त दोनों को महसूस होता था भावना कितनी भी अच्छी हो भाषा का सुलभ न होना अनावश्यक दूरियां बढ़ा देता है। इस स्थिति से उबरने की दोनों में छटपटाहट थी, अतः दोनों ने संवाद का रास्ता निकाल लिया। नैन-सैन काफी हद तक सहायक हो गये। जब एक दूसरे की बात समझ नहीं पाते थे तो दोनों अपने आप पर खूब हंसते थे। बच्चे होते थे तो वे भी हंसी में शामिल हो जाते थे। कस्तूरबा की अंग्रेजी में सुधार आने लगा था। भले ही मोहनदास पति होने के बावजूद, पत्नी को गुजराती पढ़ना ना सिखा पाये हों पर दोस्ती की ललक और संवादहीनता के दबाव ने कस्तूरबा को अंग्रेजी सीखने में मदद की। जब कस्तूरबा ने अपनी व्यक्तिगत बातें मिली के साथ बांटी तो आत्मीयता बढ़ी और दोनों ने गोरे मित्रों से मिलना-जुलना शुरू कर दिया। कस्तूरबा भी बातचीत में अपनी टूटी-फूटी अंग्रेजी से हिस्सा लेने लगी थी।

मोहनदास मेहमाननवाज़ी में आगे रहते थे। वे चाहते थे मिली को अपने मित्रों और वहां के भारतीय नेताओं से जल्दी परिचित करा दें। खासतौर से उन नेताओं से जिनसे पोलक मिल चुके थे और वे सब उसका सम्मान करने लगे थे। मोहनदास ने अपने घर पर पचास लोगों को आमंत्रित किया। कस्तूरबा के मन में एक बार को आया कि इतने दिन हो गये, उसके पति ने उससे मिलाने के लिए तो कभी किसी मित्र को नहीं बुलाया। फिर अपने आप ही उसे हंसी आ गयी, बुला भी लेते तो वह उनके सामने गुड़िया सी बैठी रहती, न समझ पाती और न कुछ कह पाती।

उस आयोजन में एक गड़बड़ हो गयी। गलाल नाम का हिन्दू नौकर था जो विश्वसनीय भी था और सीधा भी। उसने मोहनदास से दफ्तर जाते हुई गुजराती में कुछ पूछा। उन्होंने हां कर दी। उसने अपनी अच्छी भावना से अच्छे खासे वाल-पेपर पर सफेदी पोत दी। जब वह मालिक की अनुमति ले चुका था तो भला उसे कौन रोकता। जब मोहनदास शाम को लौटे तो कमरे की हालत देखकर सन्न रह गये। उन्होंने दार्शनिक अंदाज में अपने कंधे उचकाये और अपनी एक पूर्व सचिव के पति को बुलाया। वह भवन निर्माता यानी बिल्डर और सज्जाकर्ता यानी डेकोरेटर, दोनों था। उससे उन्होंने सारी स्थिति समझाते हुए अगले दिन दोपहर तक कमरा ठीक कर देने के लिए कहा। अगले दिन जब मिली अंदर मेज-कुर्सी आदि लगवा रही थी तो पहला मेहमान आ गया। मोहनदास ने मिली की अनुपस्थिति का वास्तविक कारण अपने उस मेहमान को समझाया। धीरे-धीरे यह बात हर मेहमान को पता चल गयी। लोगों ने खूब आनंद लिया यहां तक गलाल के लिए गलाल द ग्रेट...गाना भी गाया।

मोहनदास तेजी से बदल रहे थे।

लंच के अगले दिन से सब घर वाले उनके टाइम-टेबुल के हिसाब से अपने अपने काम में लग गये। ठीक 6.30 बजे तैयार होकर सब मर्द चक्की पर आटा पीसने के लिए इकट्ठे हो जाते थे। चक्की मोहनदास और पोलक पीसते थे। कभी-कभी कस्तूरबा चक्की से संबंधित गीत गुनगुनाती थी। मिली समझती भले ही न हो पर चाव से सुनती थी। घर के आटे से ही रोटी बनती थी। आधा घंटे के लगभग जमकर आटा पीसा जाता था। यह काम सबको मजेदार लगता था। हंसी-मजाक भी बीच-बीच में चलता रहता था। कसरत की कसरत और घास का पिसा शुद्ध आटा अलग।

एक दिन पोलक दफ्तर से लौटे तो काफी परेशान और चिन्तित थे। मिली भी उन्हें देखकर परेशान हो गयी। उसे लगा कहीं कुछ गलत है। उससे तो कोई गलती नहीं हो गयी। उसने अपने को टटोला पर उससे कोई गलती नहीं हुई थी। पोलक मि. गांधी से बात नहीं कर रहा था। रात का भोजन खूब हंसी-खुशी से भरा होता था पर उस शाम खाना केवल खाने के लिए हुआ था। सब चुप थे। जैसे ही खाना खत्म हुआ पोलक उठा और अपने कमरे में चला गया। मोहनदास भी चुप थे। वह चकित भाव से पोलक के पीछे कमरे में गयी।

'क्या हुआ?' उसने पूछा, 'तुम इतने नाराज क्यों हो?'

पोलक ने मिली को बताया दक्षिण अफ्रीका के एक जाने-माने पत्रकार ने ट्रांसवाल में रह रहे प्रवासी भारतीय व्यवसायी और प्रवासियों के बारे में एक जानी-मानी पत्रिका में बहुत गलत और नुकसान पहुंचाने वाला लेखा लिखा है। पर मि. गांधी खामोश हैं। यहां तक कि उन्होंने भारतीयों के बारे में बहुत से भ्रामक, झूठे और नुकसान पहुंचाने वाले तथ्यों का विरोध करने तक से मना कर दिया। जबकि वे जानते हैं कि इन गलत बातों का लंदन में सरकार और हुक्मरान पर बहुत खराब असर पड़ेगा।

मिली को पति के साथ सहानुभूति हो रही थी। हो सकता है पोलक जितना बढ़ा

चढ़ाकर लेख को देख रहा है बात उतनी गंभीर न हो। अगर मि. गांधी समझते हैं कि आलेख उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जिसका नोटिस लिया जाये तो पोलक को क्या जरूरत है? दरअसल मिली भी वहां की राजनीति और उसके रास्तों से अनभिज्ञ होने के कारण अनजान थी, इसलिए उसके लिए कहना मुश्किल था कि उसका पति बात का बतंगड़ क्यों बना रहा है।

कस्तूरबा बस चकित और चुप थी। पहले कभी ऐसा हुआ नहीं था।

चार दिन ऐसे ही गुजर गये। सब तनाव अनुभव कर रहे थे पर कोई कह कुछ नहीं रहा था। इन चार दिनों में पोलक और मि. गांधी आपस में एक शब्द नहीं बोले, सिवाय औपचारिक या व्यवसायिक बातों के। शाम को या तो अपने-अपने कमरों में बैठे रहते या बरामदे में टहल लेते थे।

सभी लोग अनुभव कर रहे थे, घर उल्टा घूम गया है। आखिरकार कस्तूरबा ने मिली से अपनी टूटी-फूटी अंग्रेजी में, 'व्हाट मि. पोलक? व्हाट फॉर ही क्रास विद बापू?'

मिली ने बताया, 'यस, पोलक इज क्रास विद बापू।'

'व्हाट बापू डन?'

'ही हेज़ नॉट डन एनिथिंग, दैट इज व्हाई हेनरी इज क्रास विद हिम।'

मिली ने उन चार दिनों में बहुत कुछ सुना था। उसने कस्तूर को धीरे-धीरे समझाया। हेनरी के मत के बारे में भी बताया जिसे वह अच्छी तरह जानती थी।

'ओह...ओह...'

कस्तूरबा की बात से मिली समझी कि उसे कोई अफसोस नहीं कि हेनरी बापू से नाराज है।

रात को जब खाना खाकर बाहर आये तो मि. गांधी ने पोलक को बुलाया, 'मुझे तुमसे कुछ बात करनी है।' वे दोनों कमरे में चले गये, बाकी सब लोग बाहर रुक गये।

मि. गांधी ने पोलक से पूछा, 'तुम्हें क्या हो गया, तुम नाराज और असंतुष्ट क्यों हो?'

'आप सब जानते हैं कि क्या बात है।' पोलक ने जवाब दिया।

'मुझे तुमसे सुनना है, तुम बताओ।'

'आपका, एन...के रिव्यू में छपे लेख के बारे में रवैया है...'

'लेकिन तुम उसके बारे में इतने परेशान क्यों हो?' मि. गांधी ने शांत स्वर में पूछा।

'वह झूठ से भरा है, आप यह अच्छी तरह जानते हैं।'

'हां, मैं जानता हूं, उसमें सब कुछ झूठ है। उससे क्या होता है?'

'होता है,' पोलक ने जोर देते हुए कहा, 'बहुत कुछ होता है। आप ऐसी गलत बयानी को अनदेखा नहीं कर सकते। दूसरों को क्या पता वह झूठ है। जब तक कोई जिम्मेदार व्यक्ति बतायेगा नहीं तो पाठकों को कैसे पता चलेगा? ऐसे ही लेख भारतीयों की मुश्किलें बढ़ाते हैं। उनकी जिन्दगी असंभव बना देते हैं। यह जरूरी है कि सच्चाई भी लोगों तक पहुंचे। भारतीय समुदाय के हित में यही होगा।'

'तुम मुझसे चाहते क्या हो?'

'लिखकर इस झूठ का प्रतिवाद करें। पूरे तथ्य जो आप जानते हैं, सबके सामने रखिये। आपसे बेहतर कौन जानता है। आपकी उंगलियों पर है। आखिर आप लोगों का मामला है।' पोलक ने सहजता से कहा।

'वह सब तुम भी जानते हो।'

'हां, मैं जानता हूं। कोई भी जो गहराई से छानबीन करेगा, जान जायेगां इसलिए मि. एन. को गलत साबित करना आसान होगा।'

एक क्षण के लिए बात वहीं ठहर गयी। मि. गांधी की आवाज से लगा समस्या का समाधान मिल गया। वे बोले, 'अगर तुम इतनी गहराई से इस मामले में महसूस करते हो तुम ही इस बारे में लिखो। तुम्हारी बात का लोग विश्वास करेंगे।'

मामला सुलझ गया। लेख लिखा गया और छपा। लेख सराहा भी गया। पोलक का जन के साथ पहला लिखित संवाद था। छपने के अगले दिन जब सब नाश्ते पर मिले तो गांधी ओर पोलक प्रसन्न थे। कस्तूर ने पोलक से पूछा, 'यू क्रासड विद बापू?' सब खूब हंसे।

इस सबके पीछे कस्तूर की भूमिका के बारे में किसी को पता नहीं था। ❑

महापुरुषों की मूर्तियों को तोड़ा व क्षति पहुंचाया जाना अधिनायकवादी, हिटलरी एवं तालिबानी मानसिकता का द्योतक

त्रिपुरा में सर्वहारा क्रांति के जनक व्लादिमीर लेनिन की मूर्ति को बुलडोजर से तोड़ा गया। तोड़ने से पहले भाजपा के कार्यकर्ताओं ने बुलडोजर के पहिये पर शराब चढ़ाये एवं प्रतिमा को चप्पल मारे।

तमिलनाडु में पेरियाद की मूर्ति को तोड़ा गया। उत्तर प्रदेश के मेरठ में डॉ. बाबा साहब आंबेडकर की मूर्ति तोड़ी गयी। एक मंत्री ने यह कह कर कि, विदेशी महापुरुषों की भारत में जरूरत नहीं, आग में तेल डालने का काम किया है।

सर्व सेवा संघ (अ. भा. सर्वोदय मंडल) के अध्यक्ष श्री महादेव विद्रोही ने इस घटना पर दुःख व्यक्त करते हुए इसे अधिनायकवादी, हिटलरी एवं तालिबानी मानसिकता का द्योतक बताया है। उन्होंने कहा है कि भाजपा सत्ता के मद में अंधी होकर विनाशकारी कदम उठा रही है। शायद उन्हें यह मालूम नहीं है कि जब वे सत्ता में नहीं होंगे तब उनके साथ भी यही व्यवहार किया जा सकता है।

पिछले कुछ दिनों से केन्द्रीय सत्ताधारी पार्टी द्वारा उनसे भिन्न राय रखने वालों पर जानलेवा हमले किये हैं तथा उन्हें राष्ट्रविरोधी घोषित कर दिया है। लोकतंत्र में सबों को अपनी राय रखने का अधिकार है। इस अधिकार पर वे ही कुठाराघात करते हैं, जिनका लोकतंत्र, भाईचारा एवं सहिष्णुता में विश्वास न हो। उन्हें यह समझना चाहिए कि पार्टी से देश बड़ा है। और, मानवता उससे भी बड़ी है। सर्व सेवा संघ इन कृत्यों की भर्त्सना करता है तथा केन्द्र सरकार से अपील करता है कि परिस्थिति को सामान्य करने के लिए सभी आवश्यक कदम उठाये जायें और दोषियों को गिरफ्तार कर उन पर सख्त-से-सख्त कार्रवाई की जाय। **–कार्या. सचिव**

सर्व सेवा संघ (अ. भा. सर्वोदय मंडल) का 86वां राष्ट्रीय अधिवेशन

सर्व सेवा संघ (अ. भा. सर्वोदय मंडल) का 86वां राष्ट्रीय अधिवेशन अध्यक्ष महादेव विद्रोही की अध्यक्षता में 21-22 फरवरी, 2018 को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की कर्मस्थली महाराष्ट्र के वर्धा जिला स्थित सेवाग्राम में सम्पन्न हुआ।

अधिवेशन का शुभारंभ गुजरात के कर्मशील, वरिष्ठ गांधीवादी एवं लोकसत्ता (गुजराती) के पूर्व संपादक श्री प्रकाश न. शाह तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के प्राध्यापक व नेशनल मूवमेंट फ्रंट के संयोजक श्री सौरभ वाजपेयी द्वारा अन्य अतिथियों के साथ दीप प्रज्ज्वलन से हुआ। मंचासीन महानुभावों ने महात्मा गांधी, कस्तूरबा गांधी, संत विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण के चित्रों पर माल्यार्पण किया। सर्वधर्म प्रार्थना के उपरांत गत अधिवेशन के बाद से लेकर इस अधिवेशन तक जो सर्वोदय के साथी अब नहीं रहे उन्हें दो मिनट का मौन रखकर अधिवेशन की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की गयी।

वर्धा जिला सर्वोदय मंडल तथा सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान की ओर से मंचासीन अतिथियों, प्रदेश सर्वोदय मंडल के अध्यक्षों तथा सर्व सेवा संघ के पदाधिकारियों को खादी की शॉल भेंट कर सम्मानित किया गया। साथ ही अधिवेशन के इस अवसर पर तीन वरिष्ठ गांधीजनों—श्री विनय भाई (मरणोपरांत), के. एम. नटराजन एवं डॉ. गंगाप्रसाद अग्रवाल—को संघ अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने 'सर्वोदय सम्मान' प्रदान कर सम्मानित किया।

मुख्य अतिथि प्रकाश न. शाह ने 'आज की चुनौतियां और गांधी के रास्ते' विषय पर अधिवेशन को संबोधित करते हुए कहा कि देश के समक्ष आज सबसे बड़ा खतरा लोकतंत्र

अधिवेशन को संबोधित करते श्री प्रकाश न. शाह

पर आ गया है। इसका सामना सिर्फ और सिर्फ गांधी के रास्ते ही संभव है। दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एवं नेशनल मूवमेंट फ्रंट के संयोजक सौरभ वाजपेयी ने पुरानी पीढ़ी को आसन्न संकट का सामना करने का बीड़ा उठाने का आह्वान किया और कहा कि आज उनके पास समझ है, अनुभव है, त्याग है, लेकिन नयी पीढ़ी इससे अनजान है।

अधिवेशन को संबोधित करते सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष श्री महादेव विद्रोही तथा मंच पर बैठे अन्य गांधीजन

इसलिए नयी पीढ़ी के भ्रम को दूर करने और उसे अहिंसक सत्याग्रही बनाने का काम आज की सबसे बड़ी जरूरत है।

सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में कहा कि देश में एक प्रतिशत अमीर और 99 प्रतिशत निर्धन हैं, बड़े उद्योगपतियों को किसानों की जमीन छिनकर दिया जा रहा है तथा बैंकों में जमा आम जनता के धन की लूट हो रही है। उन्होंने सर्व सेवा संघ के वाराणसी परिसर की जमीन बलपूर्वक हथियाने की स्थानीय जिला प्रशासन की नापाक कोशिश से भी सभा को अवगत कराया और बताया कि किस तरह षड्यंत्रपूर्वक गांधी, जेपी के हेरिटेज को मिटाकर आज की सरकार सड़क और मॉल बनाना चाहती है। लेकिन हम इनके इस मंशा को पूरा नहीं होने देंगे।

इस अवसर पर सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान के अध्यक्ष जयवंत मठकर, सर्व सेवा संघ के पूर्व अध्यक्ष डॉ. सुगन बरंठ, सुश्री राधा बहन भट्ट, वरिष्ठ गांधीवादी विचारक डॉ. रामजी सिंह, सर्व सेवा संघ के महामंत्री शेख हुसैन, प्रबंधक ट्रस्टी टी.आर. एन. प्रभु, मंत्री रमेश पंकज सहित अन्य कई कर्मशील गांधी-विचारनिष्ठ मंच पर उपस्थित रहे।

दूसरा दिन

22 फरवरी को माता कस्तूरबा की पुण्य-तिथि पर सुबह 9.30 बजे एक स्मृति कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस अवसर पर सर्व सेवा संघ की पूर्व अध्यक्ष राधाबहन भट्ट तथा पवनार आश्रम की उषा बहन ने बा के मानवता और स्वतंत्रता के प्रति समर्पण भाव पर अपने विचार प्रकट किया। राधा बहन ने कहा कि कस्तूरबा में लोगों के प्रति समर्पण और स्वतंत्रता का भाव भरा था। वे स्वतंत्रता की पक्षधर थीं। गांधीजी तथा अन्य लोगों के लिए बा का समर्पण भाव अतुलनीय था। स्मृति कार्यक्रम का संचालन राजस्थान सर्वोदय मंडल की अध्यक्ष आशा बोथरा ने की। कार्यक्रम का शुभारंभ उत्तराखंड के लक्ष्मी आश्रम की बहनों ने माता कस्तूरबा की याद में गीत प्रस्तुत करते हुए किया।

वयोवृद्ध गांधीवादी बिहार के शिवानंद भाई एवं महाराष्ट्र के लता पाटनकर के निधन पर शोक संवेदना प्रकट करते हुए कार्यक्रम में उनकी आत्मा की शांति हेतु दो मिनट का मौन रखा गया।

किसान की समस्याओं और उन समस्याओं पर हो रही घटिया राजनीति पर विस्तार से अपनी बात रखते हुए बतौर मुख्य वक्ता जयदीप हार्डिकर ने 'मिटती खेती, उजड़ता किसान' विषय पर कहा कि सौ साल पहले किसानों की जो स्थिति थी, वर्तमान में किसानों की स्थिति उससे भी बदतर है। सौ साल पहले किसानों की स्थिति सुधारने के लिए गांधीजी ने आंदोलन किया। उस समय देश अंग्रेजों के अधीन था और आज हमारे ही देश के नेता किसानों को बर्बाद करने पर तुले हुए हैं।

महात्मा गांधी ने वर्ष 1918 कृषि क्षेत्र को स्वावलंबी बनाने का सपना देखा था, लेकिन वह सपना अधूरा रह गया। जिसे हमलोगों को पूर्ण करना है। गांधीजी कभी भी टेक्नोलॉजी के खिलाफ नहीं थे। किसानों को टेक्नोलॉजी अपनाते हुए कृषि उपज में वृद्धि करनी है। उन्होंने किसान आत्महत्या पर सरकार की गलत नीति पर प्रहार किया।

इस अवसर पर श्रीकांत बाराहाथी एवं अन्य कई गांधीवादी विचारक, शिक्षाविद्, समाजसेवी, वरिष्ठ पत्रकार और पर्यावरण संरक्षक उपस्थित थे।

कार्यक्रम में किसानों की समस्याओं पर झारखंड के मधुकर, बिहार के तपेश्वर भाई, छत्तीसगढ़ के सियाराम साहू, केरल के जोश मैथ्यू, टी. आर. एन. प्रभु, ए. राजेन्द्रन, कर्नाटक के ई. पी. मेनन सहित अन्य कई लोगों ने अपने-अपने विचार रखे। वक्ताओं ने वर्तमान सरकार के जुमले और किसान से किये जा रहे विश्वासघात पर अपनी बात को विस्तार से रखा। इस अवसर पर वरिष्ठ पत्रकार प्रकाश न. शाह, दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रो. सौरभ वाजपेई, प्रो. रामजी सिंह, सद्भावना संघ, मुम्बई के संयोजक किशन गोरडिया, राजस्थान सर्वोदय मंडल की अध्यक्ष आशा बोथरा, दिल्ली सर्वोदय मंडल के संयोजक अशोक शरण, सर्व सेवा संघ प्रकाशन के संयोजक अरविन्द अंजुम, सर्वोदय जगत के संपादक अशोक मोती, असम के भीमकांत कोंवर, सर्व सेवा संघ के प्रबंधक ट्रस्टी टी. आर. एन. प्रभु सर्वोदय समाज के संयोजक आदित्य पटनायक आदि की कार्यक्रम में विशेष उपस्थिति रही।

कार्यक्रम की अध्यक्षता सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही तथा संचालन मंत्री रमेश पंकज ने की। **–स.ज. प्रतिनिधि**

अ. भा. सर्वोदय समाज का 47वां सम्मेलन

गांधी की कर्म-स्थली सेवाग्राम, वर्धा के ऐतिहासिक स्थल पर बड़े भव्य पंडाल में अ. भा. सर्वोदय समाज का 47वां सम्मेलन 23 फरवरी से प्रारंभ होकर 25 फरवरी 2018 को सम्पन्न हुआ।

अ. भा. सर्वोदय समाज के 47वें सम्मेलन में गांधीजी के चित्र पर माल्यार्पण करते वरिष्ठ गांधीजन

तीन दिवसीय सम्मेलन के प्रथम सत्र का शुभारंभ उपस्थित गणमान्य लोगों द्वारा दीप प्रज्ज्वलन से हुआ। सभा की अध्यक्षता के लिए डॉ. एस. एन. सुब्बराव, उद्घाटन संबोधन के लिए राजमोहन गांधी, मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. एस. वाई. कुरैशी तथा विशेष अतिथि के रूप में पद्मविभूषण न्या. चन्द्रशेखर धर्माधिकारी, स्वागताध्यक्ष के रूप में श्री धीरुभाई मेहता, सर्वोदय समाज के 70 साल के इतिहास पर वक्तव्य के लिए सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही, स्वागत के लिए सर्वोदय समाज के संयोजक आदित्य पटनायक एवं सेवाग्राम आश्रम के अध्यक्ष जयवंत मठकर तथा सम्मानित अतिथियों के रूप में श्री बालविजय भाई, सुश्री प्रवीणा देसाई, डॉ. रामजी सिंह, सुश्री राधा भट्ट, मार्टिन लूथर किंग के जूनियर के सहयोगी डॉ. एवेरेट जेन्डलेर, डॉ. सुगन बरंठ, महेश शर्मा, हरिजन सेवक संघ के अध्यक्ष प्रो. शंकर सान्याल, मंच संचालन किये अरविन्द अंजुम व अविदा बेगम तथा मीडिया समन्वयक के रूप अशोक मोती मीडिया प्रतिनिधियों के बीच उपस्थित थे।

लक्ष्मी आश्रम कौसानी की बहनों तथा प्रशांत गुजर के भजन *'वैष्णव जन तो तेणे कहिये'* से सभा की शुरुआत हुई।

सर्वोदय समाज के संयोजक आदित्य पटनायक ने उपस्थित अथितियों का स्वागत करते हुए कहा कि आज भारत ही नहीं पूरे विश्व की स्थिति गंभीर है। चारों ओर हिंसा-नशा का कुप्रभाव, महिला उत्पीड़न, दलितों के ऊपर अत्याचार, सामाजिक अन्याय और विविध प्रदूषण, नदियों का अतिक्रमण, जमीन की लूट, किसान आत्महत्या, परमाणु युद्ध के खतरे व्याप्त हैं। इसलिए मौजूदा परिस्थिति को बदलने के लिए यहां हम सब संकल्प करें कि अपने-अपने प्रयास में हम सफल हों।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि राजमोहन गांधी ने कहा कि आजादी के बाद देश में गांधीजी की गलत छवि उभारने का प्रयास किया जा रहा है। गांधीजी के बारे में न केवल झूठ बोला जा रहा है बल्कि उसे फैलाया भी जा रहा है। लोगों को भ्रमित किया जा रहा है। अन्याय अपने चरम पर है। इसे रोकना होगा, हमें एकजुट होकर महात्मा गांधी के रास्ते पर चलकर अन्याय के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करनी होगी। आज समय की

आवश्यकता है कि जो लोग गांधीजी के विचारों को मानने वाले हैं, उन्हें अपने कर्म एवं जीवन से फैलाये जा रहे इस झूठ का सच आम जनता तक पहुंचायें।

सम्मेलन को संबोधित करते हुए विशेष अतिथि पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त एस. वाई. कुरैशी ने कहा कि आज के दौर में पैसे की बदौलत चुनाव जीता जा रहा है। लोकसभा तथा विधानसभा अपराधियों का गढ़ बन गया है। बलात्कारी, हत्यारे, चोर-डकैत चुनाव जीतकर शासन चला रहे हैं। लोकसभा, विधानसभा में तमाम ऐसे नेता हैं, जो बलात्कार, हत्या, घोटालों के संगीन अपराध से घिरे हुए हैं। दुनिया के सबसे शक्तिशाली लोकतंत्र वाले हमारे देश के लिए इससे बड़ा दुर्भाग्य और कुछ नहीं हो सकता है। हमें इस पर विचार करना होगा। अपराधियों को वोट देने से बचना होगा। हमें महात्मा गांधी के आदर्शों पर चलना होगा और अन्याय का विरोध करना होगा।

सत्र की अध्यक्षता कर रहे वरिष्ठ गांधीवादी डॉ. एस. सुब्बराव ने अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में कहा कि गांधी का कहना था कि स्वतंत्र भारत की सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि जिसके हाथ में सत्ता होगी, उसके अंदर से संवेदनाएं मर जायेंगी। आज के दौर में संवेदनाएं मरती जा रही हैं। हमें फिर से संवेदनाओं को जगाना होगा। गांव-गांव जाकर हिन्दी का प्रचार करना होगा और सभी को संस्कृति, भाषा को ग्रहण करते हुए समस्त भारत को एक साथ जोड़ना होगा। तब जाकर सर्वोदय समाज के लक्ष्य को हम पा सकेंगे, अन्यथा नहीं।

राजस्थान सर्वोदय मंडल की अध्यक्ष आशा बोथरा के धन्यवाद ज्ञापन के साथ सत्र का समापन हुआ।

आज के दूसरे सत्र का संचालन नीता महादेव और श्रीराम जाधव ने किया। आज का विषय था 'पर्यावरण का संकट और गांधी दृष्टि : जल, जंगल और औद्योगीकरण'। और वक्ता थे, जल पुरुष डॉ. राजेन्द्र सिंह, मेधा पाटकर, फर्नांडो (मैक्सिको), मोहन भाई, हीराभाई हीरालाल। इसके पश्चात्‌ एक खुले सत्र तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम से सत्र का समापन हुआ।

दूसरे दिन के प्रथम सत्र का विषय था—'शांति एवं राष्ट्र-निर्माण में युवा शक्ति'। वक्ता के रूप में उपस्थित थे त्रिपुरा के देवाशीष, सुकुमारन, मुदिता विद्रोही, इनामल भाई, अदिति पटनायक, चंदन पाल, आशा बोथरा, जर्मन यूथ, मधु भाई, सारंग तथा ई. पी. मेनन आदि। इसके बाद एक खुला सत्र एवं एक तकनीकी सत्र का भी आयोजन हुआ। तकनीकी सत्र का विषय था, 'स्त्री-शक्ति, समस्याएं एवं समाधान', जिसमें कालिन्दी बहन, गीतांजलि पटनायक, नीता महादेव, उषा पंडित, वनिता सामल तथा मेरी जेंडलर। भोजनावकाश के बाद के सत्र का विषय था, 'गांव और किसानों पर संकट और समाधान तथा ग्राम स्वराज के रास्ते', जिसमें डॉ. अशोक बंग, अविनाश काकड़े, विजय जावंधिया, कनकभाई तथा शुभा प्रेम ने अपने विचार व्यक्त किये। इसमें एक तकनीकी सत्र भी चला, जिसका विषय था, 'रचनात्मक कार्यक्रम : वर्तमन और भविष्य' (नशामुक्ति व स्वावलंबी समाज निर्माण और गांधीजन)। सत्र का संचालन शेख हुसैन तथा सविता मालपानी ने किया। वक्ता के रूप में श्री पद्मचरण नायक, नारायण भाई, ए. अन्नामलाई, फैजल भाई तथा लक्ष्मीदास आदि ने भाग लिया।

सम्मेलन के तीसरे दिन का विषय था, 'दुनिया के समक्ष उभरती हिंसा की समस्याएं, सामाजिक और राजनैतिक चुनौतियां और विकल्प की खोज एवं विश्व शांति के लिए सर्वोदय, सर्वोदय समाज की भूमिका एवं सर्वोदय समाज का भविष्य'। इस सत्र का संचालन जीवीवीएसडीएस प्रसाद, बीजू बोरबुराहा ने किया। वक्ता के रूप में प्रो. मथाई, जी. ज्ञानम, ई. पी. मेनन, पीटर रूहे, एवेरेट जेन्डलेर आदि ने अपने महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये। बाद में एक खुला सत्र भी सम्पन्न हुआ।

समापन सत्र का संचालन सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही तथा गीतांजलि पटनायक ने किया। इस अवसर पर वक्ता थे डॉ. रामजी सिंह, जयवंत मठकर, चन्द्रशेखर धर्माधिकारी तथा डॉ. एस. एन. सुब्बराव।

सम्मेलन स्थल पर युवाओं की सहभागिता लगभग 40 प्रतिशत रही और जिन्होंने प्रमुखता से भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, प्रदूषण और असमानता जैसे विषयों पर काम करने का संकल्प लिया। भोजन की व्यवस्था इन युवाओं ने पूरी तरह से अपने कंधों पर उठा लिया था।

डॉ. सुगन बरंठ के धन्यवाद ज्ञापन के साथ सर्वोदय समाज के 47वें सम्मेलन का समापन हुआ। **–स.ज. प्रतिनिधि**

टी.आर.एन. प्रभु सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान के अध्यक्ष मनोनीत

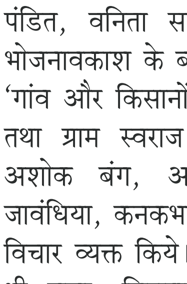

गत 20 फरवरी, 2018 को सेवाग्राम में सम्पन्न सर्व सेवा संघ कार्यसमिति ने सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान के अध्यक्ष की नियुक्ति के लिए सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष को अधिकृत किया था। तदनुसार अध्यक्षजी ने सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान के संविधान की धारा 5(अ) के अनुसार श्री प्रभु को सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान का अध्यक्ष मनोनीत किया है।

श्री प्रभु का जन्म 29 मई 1947 को केरल में हुआ। आपने गांधी-दर्शन एवं राष्ट्रभाषा में एम. ए. किया। गांधीजी की शताब्दी के समय 1969 में सर्वोदय आंदोलन में शामिल हुए तथा सर्वोदय के अग्रणी श्री नारायण देसाई के नेतृत्व में शांति सेना प्रशिक्षक का प्रशिक्षण प्राप्त किया। आप केरल तरुण शांति सेना के संयोजक रहे। 1975 में जब देश में आपातकाल की घोषणा हुई, तब आपको मीसा के अंतर्गत गिरफ्तार कर लिया गया। 1977 में लोकनायक जयप्रकाश नारायण द्वारा स्थापित छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी में शामिल हुए। आपने गांधी शांति प्रतिष्ठान, केरल के युवा समन्वयक के रूप में भी कार्य किया। श्री प्रभु मलयालम में गांधी-विचार के प्रकाशक 'पूर्णोदय बुक ट्रस्ट' के उपाध्यक्ष हैं। आपने सर्व सेवा संघ के मंत्री की जिम्मेवारियों को भी बखूबी निभाया है तथा प्रबंधक ट्रस्टी की जिम्मेवारी निभा रहे हैं।**–शेख हुसैन, महामंत्री**

और अन्ततः

शहीद पत्रकार : गणेश, गांधी और गौरी को श्रद्धांजलि!!!

निष्पक्ष, निर्लोभ और निर्भीक ही बने पत्रकार

आज भारत में लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ कहे जाने वाले मीडिया और प्रेस की सामाजिक भूमिका पर सर्वाधिक बहस हो रही है, जो अनायास नहीं सायास है। आरोप है कि मीडिया का राष्ट्रीय चरित्र बदल गया है और वह राष्ट्रीय लोकचेतना का निष्पक्ष वाहक न बनकर जाति, धर्म, क्षेत्रवाद, भाषावाद और पूंजी आधारित सकीर्ण मानसिकता का पर्याय बन गया है। कारण स्पष्ट है कि प्रेस और पत्रकारिता में भी आखिरी और मूल शर्त निजी पूंजी है। भूमंडलीकरण के इस दौर में बाजार-पूंजी और तकनीक का सहज सामान्य गठजोड़ है, जिसमें नये गढ़े शब्दों, नारों और सोच ने, हर चीज को बिकने योग्य वस्तु बना दिया है। देश में चाहे वह सरकार हो या कोई योजनाकार, सब एक कपोल कल्पित सपने को अपनाने में लग गये हैं। मीडिया और प्रेस इसी बाजारवाद के लोमहर्षक मंत्रों का जाप व गुणगान करने में लगा है।

19वीं सदी के मध्य में जब भारत में पत्रकारिता का जन्म सामाजिक विषमता के विरुद्ध शंखनाद के रूप में हुआ, अब यह मीडिया के चिन्ता का विषय नहीं है। अब उसके रक्त में सेवा, त्याग और निर्भीकता स्वाभाविक रूप में नहीं है। उदारीकरण के बाद से जो विज्ञापन की पूंजी बाजार में आयी है, उसने समाचार-पत्रों की बुनियाद ही नहीं उसकी संपादकीय नीतियों को ही बदल डाला है और पता चलता है कि मीडिया का सामाजिक आधार केवल अत्यन्त संकुचित ही नहीं हो चला है बल्कि समाज विरोधी भी हो चला है। अब मुद्दों की पत्रकारिता समझिये मृतप्राय हो गयी है। पत्रकार जब सेवाभाव से रहित नौकर की तरह काम करने लगे तो यह परिणाम स्वाभाविक है। स्पष्टतः पूंजी ने मीडिया और पत्रकारिता को अपनी चेरी बना लिया है।

कल तक पत्रकारिता एक मिशन, सेवा, त्याग, देशभक्ति होती थी। निर्भीकता से जन-सेवा करना एक उद्देश्य हुआ करता था, वह जनोन्मुख न होकर बाजारोन्मुख हो गया है। सभी न्यूज चैनलों तथा समाचार पत्रों में यही होड़ चली है। एक तो करेला ऊपर से नीम चढ़ा। मीडिया का चरित्र बाजार के कारण तो खराब हुआ है, उसे सत्ता ने चापलूस बनाकर कहीं का नहीं छोड़ा। इसलिए आज उसे 'गोद मीडिया' की संज्ञा मिल गयी है, जिसे सामाजिक, आर्थिक विषमता, भ्रष्टाचार, दलित आदिवासी का शोषण और उसकी लड़ाई में कोई दिलचस्पी नहीं रह गयी है। यानी अब पत्रकारिता सेवा नहीं और न ही पत्रकार ही एक सेवक है।

यदि हम ऐसे में, शहीद पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी और गांधी का पत्रकारिता में योगदान को भूलना चाहें तो कभी भुला नहीं सकते। शहीद पत्रकार की पुण्य-तिथि पर उन्हें नमन् करते हुए इस बात को कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि गणेश शंकर विद्यार्थी और गांधी इस देश के सबसे बड़े शहीदी पत्रकार हुए। विद्यार्थीजी सही तथ्य प्रकाशित होने पर अपने पक्ष को लेकर जितना अधिक अडिग रहते थे उसी तरह गलत तथ्य प्रकाशित होने पर खेद प्रकट करने में भी कोई संकोच नहीं करते थे। कांग्रेस के पूंजीवादी मानसिकता के नेतागण, जहां देशी सामंतों के अत्याचारों की अनदेखी करने में अपना हित समझते थे, गणेश शंकर विद्यार्थी उनसे टकराते थे और लहूलुहान होकर भी हार नहीं मानते थे। ब्रिटिश सरकार तो उनका दुश्मन थी ही, सामंत और महंत लोगों के आंखों की वे किरकिरी बने हुए थे। उनका स्पष्ट मानना था कि पत्रकार जो लिखे प्रमाण और परिणाम का विचार कर लिखे और गति-मति में सदैव शुद्ध और विवेकशील रहे। पत्रकार का पैसा कमाना ध्येय नहीं बल्कि लोकसेवा है। देश और समाज के प्रति उनकी निर्भीक प्रतिबद्धता ही थी जिसके चलते वह साम्प्रदायिक दंगे की आग बुझाने की कोशिश में साम्प्रदायिक उन्मादी भीड़ के हाथों मारे गये। गांधी ने न केवल अपनी मौत विद्यार्थी की तरह होने की कामना की बल्कि स्पष्ट कहा कि कानपुर की घटना से हमें सबक लेनी चाहिए, ताकि हम यह अनुभव कर सकें कि स्थानीय शांति स्थापना के लिए यदि 300 स्त्री-पुरुषों का भी बलिदान हो जाता तो ज्यादे महंगा नहीं था। गांधी ने कहा, 'मेरा कलेजा फट रहा है किन्तु इतनी शानदार मृत्यु के लिए मैं कोई शोक-संदेश नहीं दूंगा।'

गणेश के बाद पत्रकार गांधी की भी शहीदी इच्छा पूरी हुई और साम्प्रदायिक तत्त्वों ने उन्हें भी गोली का शिकार बनाया। गांधी ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जिस तरह अपनी निष्पक्ष पत्रकारिता का नमूना पेश किया, वह अब तक आजाद भारत में बहुत कम देखने को मिला है। दरअसल पत्रकारिता जो जैसे गांधी के खून में ही थी। अखबार की आवश्यकता पर उन्होंने स्पष्ट कहा, "मेरा ख्याल है कि ऐसी कोई भी लड़ाई जिसका आधार आत्मबल है, अखबार की सहायता के बिना नहीं चलायी जा सकती।" इण्डियन ओपनियन, साप्ताहिक का पहला अंक 4 जून, 1903 को गांधी ने निकाला और वह भी एक साथ चार भाषाओं में। बाद में यंग इंडिया, नवजीवन और हिन्दी नवजीवन को भी निकाला। 18 अक्टूबर 1939 को जब इन सप्ताहिकों पर कुछ पाबंदियां लगायी गयीं तो कड़ी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा, "यदि प्रेस की स्वतंत्रता पर इस तरह प्रहार किया जायेगा तो मैं उसे नहीं मानूंगा, उसका विरोध करूंगा।" सर्वोदय मासिक, अगस्त 1938 में सेवाग्राम में प्रकाशित हुआ। 1947 में पटेल को पत्र लिखकर गांधी ने हरिजन को बंद करने की सलाह दी, कहा—मेरा मन सरकार के कामों के साथ नहीं है। अगर अखबार चलेगा तो मैं सरकार के खिलाफ लिखूंगा। गांधी सदैव मनगढ़ंत, द्वेषपूर्ण और चरित्र हनन करने वाली पत्रकारिता के कट्टर विरोधी थे।

जिस तरह गणेश और गांधी को साम्प्रदायिक तत्त्वों ने खामोश कर शहीदी पत्रकार बनाया, उसी तरह पत्रकारिता जगत की एक बुलंद आवाज गौरी लंकेश को भी साम्प्रदायिक तत्त्वों ने खामोश कर दिया। 13 सितंबर, 2017 का अंक उनका अंतिम अंक साबित हुआ, जिसमें उन्होंने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ द्वारा फैलाये फेक न्यूज की सच्चाई को अपनी संपादकीय में उजागर किया था।

सवाल है, ऐसे में क्या पत्रकारिता और मीडिया उतना शक्तिशाली है कि वह शासन के सामने निर्भीक खड़ा हो सके? सच बोलने पर यदि आवाज खामोश की जाती है, तो क्या पत्रकारिता कोई करे ही नहीं?

साम्प्रदायिक शक्तियों से आमना-सामना करने तथा शोषण मुक्त समाज बनाने की निर्भीकता और साहस जब-जब किसी पत्रकार में दिखेगा तो मैं आशान्वित हूं कि निःसंदेह इनके साथ शहीद पत्रकार गौरी, गणेश और गांधी सदा खड़े दिखेंगे। पत्रकारिता यदि सेवा है तो पत्रकारों को बड़ी निर्भीकता के साथ आगे आना होगा और अपने प्राण तक न्योछावर करने की तैयारी रखनी होगी।

–अशोक मोती

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। प्रधान संपादक : बिमल कुमार / संपादक : अशोक मोती।